सच्चिदानन्द श्रील भक्तिविनोद ठाकुर विरचित

प्रेम-प्रदीप

गौड़ीय वेदान्त प्रकाशन

॥ श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ जयतः ॥

(पारमार्थिक उपन्यास)

प्रेम–प्रदीप

सच्चिदानन्द श्रील भक्तिविनोद ठाकुर विरचित

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति एवं तदन्तर्गत भारतव्यापी श्रीगौड़ीय मठोंके
प्रतिष्ठाता, श्रीकृष्णचैतन्याम्नाय दशमाधस्तनवर
श्रीगौड़ीयाचार्य केशरी नित्यलीलाप्रविष्ट
ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री

श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके
अनुगृहीत

त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके
द्वारा सम्पादित

गौड़ीय वेदान्त प्रकाशन

प्रकाशक—

श्रीभक्तिवेदान्त तीर्थ महाराज

प्रथम संस्करण— १०,००० प्रतियाँ

श्रीगौरपूर्णिमा

श्रीचैतन्याब्द ५२२

११ मार्च २००९

प्राप्तिस्थान

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
मथुरा (उ॰ प्र॰)
०५६५–२५०२३३४

श्रीरूप–सनातन गौड़ीय मठ
दानगली, वृन्दावन (उ॰ प्र॰)
०५६५–२४४३२७०

श्रीगिरिधारी गौड़ीय मठ
दसविसा, राधाकुण्ड रोड
गोवर्धन (उ॰ प्र॰)
०५६५–२८१५६६८

श्रीश्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
कोलेरडाङ्गा लेन
नवद्वीप, नदीया (प॰ बं॰)
०९३३३२२२७७५

श्रीरमणबिहारी गौड़ीय मठ
बी–३, जनकपुरी, नई दिल्ली
०११–२५५३३५६८

खण्डेलवाल एण्ड संस
अठखम्बा बाजार, वृन्दावन
०५६५–२४४३१०१

जयश्री दामोदर गौड़ीय मठ
चक्रतीर्थ रोड, जगन्नाथपुरी, उड़ीसा
०६७५२–२२७३१७

समर्पण

परम करुणामय एवं अहैतुकी कृपालु अस्मदीय गुरुपादपद्म नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके श्रीकरकमलोंमें उन श्रील भक्तिविनोद ठाकुर विरचित 'प्रेम-प्रदीप' नामक ग्रन्थको समर्पण करता हूँ, जिनके अभिन्न मूर्त्ति नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी 'प्रभुपाद' के श्रीचरणकमलोंमें उन्होंने अपने आपको चिर-विक्रीत कर दिया था।

श्रीहरि-गुरु-वैष्णव-सेवाभिलाषी
श्रीभक्तिवेदान्त नारायण

विषय–सूची

प्रदीप–शिखा

'प्रेम–प्रदीप' नामक ग्रन्थको प्रकाशित करनेका उद्देश्य

भारतने स्वाधीनता प्राप्त की है या फिर दुर्दशा प्राप्त की है—साधारण लोग इस विषयको स्थिर नहीं कर पा रहे हैं। मनुष्यको बचे रहनेके लिए अपने जीवनमें नित्यप्रति जिन कुछेक द्रव्योंकी अत्यन्त आवश्यकता है, उन सभी वस्तुओंका ही बहुत अधिक अभाव दिखलायी दे रहा है। प्रधान रूपमें आहारका अभाव, द्वितीयतः वस्त्रोंका अभाव, तृतीयतः स्वच्छन्द आवास स्थानका अभाव—सर्वत्र ही इस प्रकारके अभाव दिखलायी दे रहे हैं। यदि पहले ही यह बात पता होती कि देशके स्वाधीन होनेसे लोगोंको इस प्रकारकी दुर्दशाग्रस्त अवस्थामें रहना पड़ेगा, तब लोग इस प्रकारकी स्वाधीनता चाहते या नहीं—इसमें सन्देह है। ऐसे दुर्दिनोंमें कोई भी शान्तिको ढूँढ़कर भी प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं—ऐसे समयमें शान्तिका उपाय कौन बतलायेगा?

हम 'प्रेम–प्रदीप' ग्रन्थके लेखक श्रील ठाकुर भक्तिविनोदकी जीवनीसे जान सकते हैं कि उन्होंने सिपाही–विद्रोहके समय और उड़ीसाके पराधीन होनेके ठीक बाद, देशके दुर्दिनोंके समयमें जिस देश–शान्तिकी वाणीका प्रचार किया था, उसीकी ही प्रतिध्वनि–स्वरूप उनके द्वारा रचित 'प्रेम–प्रदीप' नामक ग्रन्थ ६५ वर्षोंके बाद पुनः प्रज्ज्वलित हुआ है। [जिस समय श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने इस ग्रन्थको प्रकाशित किया था] उस समय ब्राह्म–समाजके लोग अरबी और पारसी शिक्षाके प्रभावसे हिन्दुओंके प्रति हिंसा, विग्रहोंके प्रति विद्वेष, शुभकर्मोंके विनाश तथा समाजका संहार करने जैसे कार्योंमें लिप्त थे, जिससे देशके लिए भयानक दुर्दिन उपस्थित हुए थे। साथ–ही–साथ योगियोंकी शारीरिक 'कसरत' और निरीश्वर चिन्ता–स्रोत जगत्का ध्वंस करनेमें सहायता कर रहे थे। इसी

'प्रेम–प्रदीप' नामक ग्रन्थने उस समय उन सभीके प्रतिबन्धक–स्वरूप शुभदिन उदित कराये थे। इससे अधिक सौभाग्यका विषय यह है कि श्रील ठाकुर भक्तिविनोदकी अक्लान्त चेष्टासे ब्राह्म–समाज और निरिश्वर योगी–सम्प्रदायके हाथसे भारतकी रक्षा हुई है, यहाँ तक कि उन्हींकी कृपासे ही आज भारतमें ब्राह्म–समाज और योगीलोग नहीं के बराबर हैं। तथापि उन–उन धर्मोंका पालन करनेवाले दो–चार लोग अभी भी इधर–उधर बिखरे हुए दिखलायी देते हैं, उन लोगोंकी बुद्धिके संशोधनके लिए और वर्त्तमान दुर्दशाकी अवस्थामें विश्वमें पराशान्तिकी कामनासे यह ग्रन्थ पुनः प्रकाशित हुआ है। जीवोंके हृदयमें 'प्रेम–प्रदीप' की शिक्षाके प्रदीप्त होनेपर ही समस्त प्रकारके क्लेश दूर होंगे।

इस विषय अर्थात् विश्ववासियोंके समस्त प्रकारके क्लेशोंको दूर करनेके उद्देश्यसे ग्रन्थकारने इस ग्रन्थमें वर्णित विषय–वस्तुको प्रस्तुत करनेके लिए श्रीमद्भागवतके जिस आदर्श स्वरूप शिक्षा–श्लोकको आधार बनाया है, उसे नीचे लिपिबद्ध करके 'ग्रन्थको प्रकाशित करनेके उद्देश्य' को समाप्त कर रहा हूँ—

तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं
तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम्।
तदेव शोकार्णवशोषणं नृणां
यदुत्तमश्लोकयशोऽनुगीयते ॥

(श्रीमद्भा॰ १२/१२/५०)

श्रील प्रभुपादकी भाषामें उक्त श्लोकका भावार्थ है—"भागवत–कथा ही जीवोंके नित्यमङ्गलको उत्पन्न करती है। भगवान्के यशका कीर्त्तन मनुष्योंके अभावसे उत्पन्न दुःख समुद्रके अगाध जलको सुखा देनेमें समर्थ है। भगवान्की कथा ही जीवोंकी मनोवृत्तिके लिए नित्य–महोत्सव प्रदान करनेमें समर्थ है, यह कथा नव–नवायमान होकर सर्वोत्तम रुचिको प्रदान करनेवाली तथा रमणीय है। श्रीकृष्णकी कथाके अतिरिक्त अन्यान्य कथाएँ जीवकी चित्तवृत्तिको शोक–समुद्रमें

डूबा देती है। भगवत्–कीर्त्ति–कथा अपनी स्वभाविक विचित्रतासे अभावके स्थानपर जीवको स्वास्थ्य प्रदान करती है।"

ग्रन्थ परिचय

४०० चैतन्याब्द, १८८६ ई॰, १२९३ बङ्गाब्दमें श्रील ठाकुर भक्तिविनोदने इस ग्रन्थको ग्रन्थके आकारमें पहली बार प्रकाशित करके उसका इस प्रकार परिचय प्रदान किया था—"[मेरे द्वारा रचित यह 'प्रेम–प्रदीप' नामक ग्रन्थ] पवित्र हरिभक्तिकी उत्कर्षता, युक्तिकी अकर्मण्यता, शुष्क योग–चेष्टाकी निष्फलता और ब्राह्म आदि धर्मोंकी अपकर्षताको प्रदर्शित करनेवाला उपन्यास है।" यद्यपि श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने अपने इस उक्त संस्करणमें कोई भूमिका लिपिबद्ध नहीं की, तथापि स्वाधीन त्रिपुराधीश महामान्य वीरचन्द्र माणिक्य महाराज बाहादुरके उद्देश्यसे जिस उत्सर्ग–पत्रको लिखा था, उससे भी हमें इस ग्रन्थका थोड़ा परिचय प्राप्त होता है। यथा—"पवित्र वैष्णवधर्मकी सर्वश्रेष्ठता प्रमाणित करनेकी अभिलाषासे मैंने इस 'प्रेम–प्रदीप' नामक ग्रन्थकी रचना करके अपनी 'सज्जनतोषणी' (नामक पत्रिका) में इसे खण्ड–खण्ड करके प्रकाशित किया था। इसके द्वारा अनेक कृतविद्य (पढ़े–लिखे) युवकोंको कृष्णभक्तिकी प्राप्ति हुई है। अब उन्हींकी इच्छानुसार ही मैंने इस ग्रन्थको पुस्तकके रूपमें मुद्रित किया है। महाराजका वैष्णवधर्मके प्रति प्रगाढ़ अनुराग और उसके प्रचार करनेके लिए असीम अर्थको व्यय करनेकी वृत्तिको देखकर मैंने कृतज्ञतापूर्वक इस ग्रन्थको महाराजके निरन्तर हरिसेवामें रत रहनेवाले करकमलोंमें अर्पण किया है। इस ग्रन्थमें वर्णित विषयोंके किसी समयमें आपकी विद्वत्सभामें आलोचित होनेपर मेरा परिश्रम सार्थक होगा।" इत्यादि—

श्रील ठाकुर भक्तिविनोदने संस्कृत, बङ्गला, अँग्रेजी, हिन्दी और ऊर्दू आदि विभिन्न भाषाओंमें बहुत ग्रन्थोंकी रचना की है। मेरे द्वारा संकलित 'श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकी प्रबन्धावली' नामक ग्रन्थकी

भूमिकामें उनकी संक्षिप्त जीवनीका वर्णन करते हुए उक्त ग्रन्थोंकी एक तालिका दी गयी है। उनका प्रत्येक ग्रन्थ ही समस्त शास्त्रोंका सार–सङ्कलन है। 'प्रेम–प्रदीप' ग्रन्थ भी उनसे अलग नहीं है [अर्थात् इसमें भी श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके द्वारा सभी शास्त्रोंके सारको ही सङ्कलित किया गया है।]

उपन्यासिकता

साधारण उपन्यास जिस प्रकार भोगपरायण चिन्ता–स्रोतको लेकर ही रचित किया जाता है, 'प्रेम–प्रदीप' उससे सम्पूर्ण रूपमें पृथक् है। उपन्यासमें स्त्री–चरित्र जिस रूपमें वर्णित होता है, उससे पाठकोंका चित्त स्वभाविक रूपमें ही भोगोन्मुख धारणाके लिए इन्धन प्राप्त करता है। इस ग्रन्थमें किञ्चित् स्त्री–चरित्रका वर्णन रहनेपर भी, उसमें पूज्य और गौरव–भावके अतिरिक्त अन्य किसी असत्–चिन्ताको प्रश्रय नहीं दिया गया है। इसीलिए मैंने इसे केवल 'उपन्यास' नहीं कहकर 'पारमार्थिक' शब्दके द्वारा विभूषित करते हुए इसे 'पारमार्थिक उपन्यास' नाम प्रदान किया गया है। आजकल अनेक लोगोंमें उपन्यास पढ़नेकी रुचि देखी जा रही है। इसलिए उन्हींकी रुचिके अनुकूल उन्हें पारमार्थिक शिक्षाका सुयोग प्रदान करनेके लिए इस उपन्यासरूपी ग्रन्थकी विशेष आवश्यकताको जानकर इसे पुनः प्रकाशित किया गया है।

वर्त्तमान संस्करणका वैशिष्ट्य

पूर्व संस्करणकी अपेक्षा वर्त्तमान संस्करणका अनेक वैशिष्ट्य परिलक्षित होगा। इसमें प्रत्येक विषयका संक्षेपमें subheading लिखकर वक्तव्य–विषयका परिचय प्रदान किया गया है तथा विस्तृत विषय–सूची पत्रके द्वारा ग्रन्थके प्रतिपाद्य विषयसमूहका भी उल्लेख किया गया है। विशेषतः जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद परमहंस–स्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादके द्वारा प्रवर्त्तित

सम्भोगवाद–निराकरणपर विप्रलम्भ–भजनानुकूल–धाराका अवलम्बन करके इस संस्करणको प्रकाशित करनेका प्रयास किया गया है। यह भी इस ग्रन्थके सम्पादनका एक विशेष वैशिष्ट्य है।

नीचे योग और ब्राह्मधर्मके सम्बन्धमें दो–एक बातें निवेदन करके 'प्रदीप–शिखा' को निर्वापित करूँगा अर्थात् बुझाऊँगा।

योग धिक्कार

ग्रन्थकारने इस ग्रन्थमें निरीश्वर सांख्य–दर्शनके सम्बन्धमें आलोचना न करके केवलमात्र पातञ्जलयोग–दर्शनकी ही हेयता प्रदर्शित की है। निरीश्वर सांख्य सम्पूर्ण रूपसे उपेक्षित है, इसलिए उसकी आलोचना नहीं की गयी है। सांख्यवादियोंने प्रकृतिपर सर्वकर्त्तृत्वका आरोपकर पुरुषको 'निष्क्रिय', शब्दमात्र और संख्यापूर्तिके लिये स्वीकार किया है। इसीलिए सांख्यवादियोंने चौबीस प्राकृत तत्त्वोंके स्थानपर पच्चीस तत्त्व–संख्या बतलाकर विचारका अभिनय किया है। सांख्यवादी कहते हैं—प्रकृतिके अन्तर्गत स्थित तत्त्वसमूहके विचारके द्वारा ज्ञानकी उत्पत्ति होनेपर समस्त दुःखोंकी निवृत्ति हुआ करती है तथा यही मोक्ष है। वेद, वेदान्त, उपनिषद्, श्रीमद्भागवत, पुराण, इतिहास आदि समस्त शास्त्रोंने ही इसका प्रतिवाद करते हुए कहा है—प्राकृत ज्ञानसे अप्राकृत मोक्षको प्राप्त करनेकी सम्भावना असम्भव है। अतएव वेदान्तदर्शनने सांख्य–योगको धिक्कार दिया है। पातञ्जलिके अष्टाङ्गयोग द्वारा भी परमब्रह्मका ज्ञान होना असम्भव है, बल्कि वास्तवमें अष्टाङ्गयोगके द्वारा ईश्वरको माननेपर भी वह सांख्य–योगका ही प्रतीक है। अतएव उसे भी इसी प्रकारसे समझना होगा।

ब्राह्मका निर्वाण

नये धर्मप्रचारक ब्राह्माचार्य राजा राममोहन रायने वैष्णवोंसे विद्वेष करके अपने आदरणीय ब्राह्मधर्म और ब्राह्म–समाजके निर्वाणका

साधन किया है। उन्होंने वैष्णवोंपर आक्रमण करनेके लिए, श्रीमद्भागवतके सम्बन्धमें गरुड़पुराणके 'भाष्योऽयं ब्रह्मसूत्रानाम्'—इस श्रीव्यासवाणीका प्रतिवाद किया है। उन्होंने श्रीमद्भागवतको 'ब्रह्मसूत्रका भाष्य' कहकर ग्रहण करने योग्य शिक्षाको प्राप्त नहीं किया है। उनके जैसा पण्डित व्यक्ति मुसलमानोंकी आरबी और पार्सी पढ़ने जाकर मुसलमानोंकी चिन्ताधारासे प्रभावित हुआ था। वैष्णव–समाज और ब्राह्म–समाज, विद्या और अविद्याकी भाँति पृथक् हैं, इसे वे समझ नहीं सके। ईश्वरके सेवारूप कर्म और अविद्यासे उत्पन्न ज्ञान कभी भी एक नहीं हैं। ब्राह्माचार्यने आपत्ति करते हुए कहा है—श्रीमद्भागवत श्रीकृष्णलीलाका ग्रन्थ है, यदि उसे वेदान्तके भाष्यके रूपमें स्वीकार करना होता, तो वेदान्तके ५५० सूत्रोंमें किसी–न–किसी स्थानपर कृष्णनामका उल्लेख रहता। यहाँ मेरा वक्तव्य यह है कि (वेदान्तसूत्रमें) कृष्णनामका उल्लेख नहीं होनेके कारण 'श्रीमद्भागवत् वेदान्तका भाष्य नहीं है'—इस प्रकारका विचार अत्यधिक अनुचित है। किसी तत्त्व–विषयको उपाख्यानके द्वारा समझानेपर यदि कहा जाये कि उस उपाख्यानके साथ तत्त्वका कोई सम्बन्ध नहीं है—ऐसा विचार अनभिज्ञताके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। आधुनिक शिक्षाके जगत्में यही रीति है—उपाख्यानसे उपदेश तथा उपदेशसे उपाख्यान संग्रह करना। और भी, मैं यही कहना चाहता हूँ कि यदि वेदान्त–दर्शनमें प्रत्यक्ष भावसे 'कृष्ण' शब्दका उच्चारण नहीं हुआ, तो केवल इसी कारणसे यह मानना कि वेदान्तके साथ कृष्णलीलाका कोई सम्बन्ध नहीं है—यह भ्रान्त विचार है। सती–साध्वी स्त्रीसे उसके पतिका नाम पूछे जानेपर वह उसे कभी भी नहीं बोलती है। अब, प्रश्नकर्त्ताको [स्त्रीके मुखसे उसके] पतिका नाम नहीं सुनायी देनेके कारण यदि वह विचार करे कि उस स्त्रीका पति नहीं है अथवा पतिके साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं है—ऐसा विचार करनेसे सत्यको नकारना हो जायेगा। अत्यन्त प्रिय और प्रचुर गौरवपूर्ण सम्बन्धसे युक्त व्यक्तिका नाम उल्लेख करनेमें अनेक

लोग कुण्ठित होते हैं। यहाँ तक कि हमने ब्राह्माचार्य राजा राममोहन रायके आचरण और लेखनीमें भी इस विषयको स्पष्ट रूपसे लक्ष्य किया है। अपने परमप्रिय और गौरवके पात्र आचार्य श्रील शङ्करके नामका उल्लेख करनेमें संकोच करते हुए उन्होंने सर्वत्र ही उनके लिये 'भगवान् भाष्यकार', 'भगवान् भाष्यकार'—ऐसा लिखा है। यदि वे स्वयं ही गौरवके कारण आचार्य शङ्करका नाम उच्चारण करनेमें द्विधा बोध करते हैं, तो फिर वेदान्त-दर्शनकार श्रीव्यासदेवने सर्वापेक्षा प्रियतम और गौरवमय पुरुषके नामका उल्लेख करनेमें कुण्ठाबोध की है—इस प्रकारका विचार करनेपर भी क्या वह असङ्गत होगा? इसके अतिरिक्त आचार्य शङ्करने ब्रह्मसूत्रकी भाष्य रचना करने जाकर ज्ञानको ही श्रेष्ठ तथा ब्रह्मको ही ज्ञान-स्वरूपके रूपमें विचार किया है तथा ब्राह्माचार्यने भी उसे ध्रुवसत्यके रूपमें ही मान लिया है। किन्तु मेरा प्रश्न है कि क्या यह 'ज्ञान' शब्द ब्रह्मसूत्रके किसी सूत्रमें उल्लिखित है? वेदान्तदर्शनके ५५० सूत्रोंमें कहीं भी 'ज्ञान' शब्दका उल्लेख नहीं है। अतएव ब्राह्माचार्यका उक्त तर्क स्वीकार करनेपर, ब्रह्मसूत्रका ज्ञानपरक भाष्य भी उसके वास्तविक भाष्यके रूपमें स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति
श्रीश्रीगौराविर्भाव-तिथि
९ चैत्र, १३५७; ई॰ २१/३/५१

त्रिदण्डिभिक्षु
श्रीभक्तिप्रज्ञान केशव

निवेदन

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता-सभापति मदीश्वर परमाराध्य जगद्गुरु नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी प्रभुवर द्वारा विगत ९ चैत्र १३५७ बङ्गाब्द, २१/३/१९५१ ई॰ को श्रीश्रीगौर-आविर्भाव-तिथिपर श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुँचुँड़ासे श्रील भक्तिविनोद ठाकुर विरचित (पारमार्थिक उपन्यास) 'प्रेम-प्रदीप' ग्रन्थ आदि-संस्करणके रूपमें सम्पादित तथा प्रकाशित हुआ था। ग्रन्थकार और ग्रन्थके सम्बन्धमें अस्मदीय श्रील गुरुपादपद्मने 'प्रदीप-शिखा' नामक जो भूमिका लिपिबद्ध की है, उसीमें ही सभी विषय परिस्फुटित हुए हैं। ❁❁

श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने अपने सङ्कल्पित अधिकांश दार्शनिक भक्ति ग्रन्थोंको प्रकाश करके श्रीगौरहरि और गौड़ीय गोस्वामी तथा आचार्योंके मनोऽभीष्टका प्रचार किया है। उनका प्रत्येक ग्रन्थ ही समस्त शास्त्रोंका सार-सङ्कलन है। 'प्रेम-प्रदीप' ग्रन्थ भी उससे किसी भी अंशमें न्यून नहीं है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने १२९३ बङ्गाब्द, १८८६ खृष्टाब्दमें 'प्रेम-प्रदीप' नामक उपन्यासको ग्रन्थके रूपमें प्रकाशित किया। श्रीमद्भगवद्गीता (श्रील चक्रवर्ती-टीका), श्रीशिक्षाष्टकम्, दशोपनिषद्-चूर्णिका, श्रील बलदेव विद्याभूषण प्रभुके भाष्य सहित श्रीविष्णुसहस्रनाम-स्तोत्रम् एक ही समयमें प्रकाशित हुए। ❁❁

जिस समय पाश्चात्य रीति-नीति, भाव-धारा बङ्गाली तथा भारतवासियोंके लिए मोहरूपी जालकी सृष्टि करके सामाजिक और धर्मविप्लव सृष्टि कर रही थी तथा उस विप्लवकी पताकाको वहन करते हुए नया शिक्षित-सम्प्रदाय सनातन अर्थात् वैष्णवधर्मकी विकृत-मूर्त्तिको घृणा और लाञ्छनाकी दृष्टिसे देखकर नवीन भोगवाद-धर्मकी दोहाई दे रहा था, उसी समय श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने अपनी स्वतःसिद्ध अतिमर्त्य प्रतिभाके भण्डारसे 'प्रेम-प्रदीप' की दस प्रभाओंका विस्तार किया था। उन्होंने श्रीचैतन्य महाप्रभु

द्वारा प्रवर्तित गौड़ीय–वैष्णवधर्मके अति उज्ज्वल आलोकको पुनः प्रतिष्ठित तथा शुद्ध भक्तिधर्मके स्रोतको वर्त्तमान युगमें पुनः प्रवाहित किया है। इसलिए वैष्णव–समाज और शिक्षित जनसाधारणमें (वैष्णव–धर्मका आलोक तथा शुद्धभक्ति धर्म) प्रचारित हुआ हैं। उन्होंने उस समयमें प्रचलित समस्त धर्म और सामाजिक समस्याओंके मीमांसा रहित स्रोतको तुलनामूलक वैज्ञानिक और वैदिक शास्त्र–तत्त्व सिद्धान्तके आधारपर मीमांसाके लिए प्रवाहित किया था, इसलिए केवल वैष्णव–सम्प्रदाय ही नहीं, बल्कि समसामयिक और भावी समग्र मानव जाति भी उनके निकट चिरऋणी है और रहेगी। (तत्कालीन समाजकी) पाश्चात्यके अनुकरणके मोह और प्राच्यकी प्राचीनताके प्रति श्रद्धा–विश्वासके अभावको लक्षित करके उन्होंने अपने कर्णधारत्वको अपनी ही अभिन्न मूर्त्ति महापुरुष–सिंह (श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर) के हाथमें प्रदान करके व्रज–विजय की।

अनादि बहिर्मुखताके कारण हम अपने एकान्त सुहृद भुवन मङ्गल महापुरुषोंको बहुत बार पहचान नहीं पाते। इसलिए आज केवल बङ्गालमें ही नहीं, अपितु पृथ्वीपर सर्वत्र प्राकृत कवि, शिल्पी, शिक्षक, साहित्यिक, सामयिक सुविधा प्रदानकारी राजनैतिक व्यक्तियोंकी पूजा, स्मरणमें लोगोंका अत्यधिक आग्रह देखा जाता है, किन्तु [उसकी तुलनामें] भुवन मङ्गल महापुरुषोंके प्रति सामान्य प्रचेष्टा भी दिखायी नहीं देतीं। ऐसे भुवन मङ्गल महापुरुषोंके अवदान–वैशिष्ट्य और मानव–जातिके प्रति उनकी अकृत्रिम अहैतुकी करुणा ही आज हमारा आलोच्य विषय हो। ❁❁

श्रीचैतन्यदेवकी शिक्षा ही मानव–जीवनकी समस्त समस्याओंका समाधान है। जड़विद्या–द्वारा कभी कोई भी जाति अथवा समाज पराशान्ति प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिए हमारी भारतभूमिमें बहुत प्राचीन कालसे ही आत्मधर्म अथवा चेतन धर्मके अनुशीलनकी शिक्षा प्रचारित थी। हे प्राच्य और पाश्चात्य शिक्षामें शिक्षित

सुधी समाज! आप साधारण नाटक-नोवलकी भाँति इस ग्रन्थको सामयिक कौतुहलकी निवृत्तिके लिए पाठ न करके, यदि विशेष मनोयोग और धीर-स्थिर होकर पुनः-पुनः आलोचना और अनुशीलन करेंगे, तो सनातन वैदिक धर्मके चरम प्रयोजनके विषयमें वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर पायेंगे। पृथ्वीपर सर्वत्र श्रीगौरवाणीकी विजय-पताका लहराये। ❁❁

श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामीकी
शुभाविर्भाव-तिथि
५ फाल्गुन, १४०१
१८/२/१९९५

त्रिदण्डिभिक्षु
श्रीभक्तिवेदान्त वामन

प्रकाशकीय वक्तव्य

परमाराध्यतम श्रीगुरुपादपद्म नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी अहैतुकी अनुकम्पा और प्रेरणासे उन्हींकी प्रीतिके लिए सप्तम गोस्वामी श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरके द्वारा रचित पारमार्थिक उपन्यास 'प्रेम-प्रदीप' को हिन्दी भाषा-भाषी पाठकोंके समक्ष प्रस्तुत करते हुए अपार आनन्दका अनुभव कर रहा हूँ।

हिन्दी भाषामें 'प्रेम-प्रदीप' नामक ग्रन्थ १९९५ ई॰ से १९९७ ई॰ तक हमारी श्रीभागवत पत्रिकाके ४०वें तथा ४१वें वर्षमें धारावाहिक रूपमें प्रकाशित हुआ था। आज प्रायः ११ वर्षोंके बाद इसे सम्पूर्ण ग्रन्थके आकारमें प्रकाशित किया जा रहा है।

यद्यपि मदीय परमाराध्यतम श्रीगुरुदेवने अपने सम्पादकीय—'प्रेम-शिखा' तथा प्रपूज्यचरण ज्येष्ठ सतीर्थ श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराजने स्वरचित 'निवेदन' में ग्रन्थ और ग्रन्थकारके वैशिष्ट्य और परिचय आदि सभी महत्वपूर्ण विषयोंपर विस्तृत रूपसे प्रकाश डाला है, तथापि मैं भी इस विषयमें दो-शब्द लिखनेका लोभ सम्वरण न कर सका। मैं पाठकोंको ग्रन्थ पढ़नेसे पूर्व 'प्रेम-शिखा' और 'निवेदन' को मनोनिवेशपूर्वक पाठ करनेके लिए अनुरोध करता हूँ। इससे पाठकोंको परमार्थ-तत्त्वमें प्रवेश करनेके लिए एक सुन्दर दिग्दर्शन प्राप्त हो सकेगा—ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके द्वारा रचित, संकलित, सम्पादित तथा प्रकाशित ग्रन्थोंका अनुशीलन करनेपर सर्वत्र ही उनकी रचनाका एक मुख्य वैशिष्ट्य यह लक्षित होता है कि वे अपने ग्रन्थको भले कहींसे भी प्रारम्भ क्यों न करें, उसे अन्तमें व्रजके उन्नत उज्ज्वलरसकी व्याख्याके साथ ही समाप्त करते हैं।

प्रपूज्यचरण श्रीभक्तिवेदान्त वामन महाराजने अपने स्वरचित श्रीचैतन्यशिक्षामृत ग्रन्थके निवेदनमें लिखा है—"श्रील भक्तिविनोद

ठाकुर गौरकृष्णकी अमन्दोदय–कृपाशक्तिके अवतार हैं। श्रीगौरहरिके द्वितीय स्वरूप श्रीस्वरूप दामोदरने नीलाचलमें श्रीगौरसुन्दरके चरणकमलोंमें जिस अपूर्व श्लोक(१) रूपी कमलको अर्घ्य रूपमें प्रदान किया था, उसीमें ही सर्वप्रथम गौरसुन्दरकी अमन्दोदया–दयाशक्तिके रूपमें 'भक्तिविनोद' नामका आविर्भाव लक्षित होता है। अतएव 'भक्तिविनोद' महावदान्य श्रीगौरकृष्णकी ऐसी अमन्दोदय–दयाशक्ति है—जो शक्ति जीवके समस्त कर्मविनोद, ज्ञानविनोद, योगविनोदकी चेष्टाको समूल रूपसे उखाड़कर आत्मगत भक्तिविनोदको प्रकट करती है।"

इस 'प्रेम–प्रदीप' नामक ग्रन्थमें राजयोग, हठयोग आदिकी कुछ आलोचनाको देखकर कोई–कोई अनभिज्ञ व्यक्ति यह सिद्धान्त करते हैं कि श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने भक्तिसाधनके साथ–साथ योग, प्रणायाम, यम–नियम आदि करनेका भी अनुमोदन किया है, किन्तु ऐसे लोगोंकी धारणा सम्पूर्ण रूपसे भ्रान्त है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने तो भक्तिमार्गकी श्रेष्ठताको प्रतिपादित करते हुए प्रसङ्गवशतः राजयोग, हठयोग आदिकी आलोचना की है तथा उन्होंने उनका अनुमोदन नहीं, बल्कि उनकी असम्पूर्णताको ही प्रकाशित किया है। निरपेक्ष होकर शुद्ध गुरु–वैष्णवोंके आनुगत्यमें इस ग्रन्थका अनुशीलन करनेसे ही यथार्थ तत्त्वकी उपलब्धि सम्भवपर है। 'प्रेम–प्रदीप' ग्रन्थमें श्रील भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा आलोचित मुख्य–मुख्य विषयोंको नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है। यथा—

(१) भक्तोंके द्वारा की जानेवाली कर्म और ज्ञानकी आलोचना भी हरिकथाके अन्तर्गत है। (२) श्रीकृष्णसेवाके द्वारा ही शन्ति प्राप्त होती है, यम–नियम योग आदिके द्वारा नहीं। (३) भक्तिमार्ग

. . . .

(१) हेलोद्धूनितखेदया विशदया प्रोन्मीलदामोदया
शाम्यच्छास्त्रविवादया रसदया चित्तार्पितोन्मादया।
शश्वद्भक्तिविनोदया समदया माधुर्यमर्यादया
श्रीचैतन्यदयानिधे तव दया भूयादमन्दोदया॥
(श्रीचैतन्यचन्द्रोदयनाटक ८/१४, चै॰ च॰ म॰ १०/११९ में उद्धृत)

योगमार्गकी अपेक्षा श्रेष्ठ है। (४) साधक-जीवनमें संसारी लोगोंके सङ्गसे पतनका भय रहता है। (५) विषय-राग और वैकुण्ठ-रागमें क्या पार्थक्य है? (६) वैष्णवों तथा भक्तिधर्मको ठीकसे नहीं समझ पानेके कारण ही आधुनिक पाश्चात्य-सम्प्रदायकी धारणा है कि वैष्णव लम्पट होते हैं तथा भक्तिधर्म लम्पटता ही है। [उनकी स्थिति बिलकुल उस लोमड़ीके जैसी है, जो बहुत प्रयासके द्वारा भी ऊँची लताओंपर लगे अङ्गूर प्राप्त न कर 'अङ्गूर खट्टे हैं' कहकर अपनेको सान्त्वना देती है।] (७) भगवान्के श्रीविग्रहकी सेवा पौतलिकता नहीं है—यह वैष्णवधर्मके तत्त्वकी आलोचनासे ही जाना जा सकता है। (८) गोस्वामियोंके ग्रन्थोंमें ही श्रीमन् महाप्रभुका मत विशुद्ध रूपसे लिपिबद्ध है। (९) सभी प्रकारके विज्ञानमें भक्ति-विज्ञान ही श्रेष्ठ है। (१०) विशुद्ध वैष्णवोंके सङ्गमें श्रवण-कीर्त्तन करनेका सौभाग्य प्राप्त होनेपर ही भक्तियोगके अतिरिक्त अन्यान्य सभी मतोंके वास्तविक स्वरूपका ज्ञान सम्भवपर है। (११) वैष्णव-उच्छिष्टका माहात्म्य। (१२) सर्वशास्त्र सार श्रीमद्भागवतरूपी रसके पानका उपदेश। (१३) शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—इन पाँच प्रकारके रसोंका परिचय। (१४) स्वकीय और पारकीयमें क्या भेद है। (१५) रसतत्त्वमें प्रवेश केवलमात्र श्रीगुरुदेवकी कृपासे ही सम्भवपर।

पाठकोंसे मेरा अनुरोध है कि वे श्रील भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा आलोचित उपरोक्त विषयोंका विश्लेषण करके स्वयं ही निर्णय करें कि इस ग्रन्थकी वास्तविक विषय-वस्तु क्या है?

इस ग्रन्थकी पाण्डुलिपि प्रस्तुत करने, प्रूफ-संशोधन तथा ले-आउट आदि सेवा कार्योंके लिए श्रीमान् भक्तिवेदान्त माधव महाराज, श्रीमान् विजयकृष्ण ब्रह्मचारी, श्रीमान् सुबलसखा ब्रह्मचारी, श्रीमान् अच्युतानन्द ब्रह्मचारी तथा बेटी शान्ति दासी आदिने बहुत परिश्रम किया है। मैं श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-गान्धर्विका-गिरिधारीके श्रीचरणोंमें यही प्रार्थना करता हूँ कि वे इन सबको शुद्ध भक्तिमें प्रवेशाधिकार प्रदान करें।

इस ग्रन्थमें यदि कोई भूल–त्रुटि दृष्टिगोचर हो तो पारमार्थिक पाठकगण निजगुणोंसे क्षमा करेंगे तथा संशोधनपूर्वक ग्रन्थका सार ग्रहणकर बाधित करेंगे।

परमार्थ प्राप्तिके इच्छुक श्रद्धालुजन इस ग्रन्थका पाठ और कीर्त्तनकर परमार्थके पथपर अग्रसर हों—यही प्रार्थना है। अलमतिविस्तरेण।

श्रीनित्यानन्द त्रयोदशी
५२२ श्रीचैतन्याब्द
७ फरवरी, २००९

श्रीगुरुवैष्णव–कृपालेश–प्रार्थी
श्रीभक्तिवेदान्त नारायण
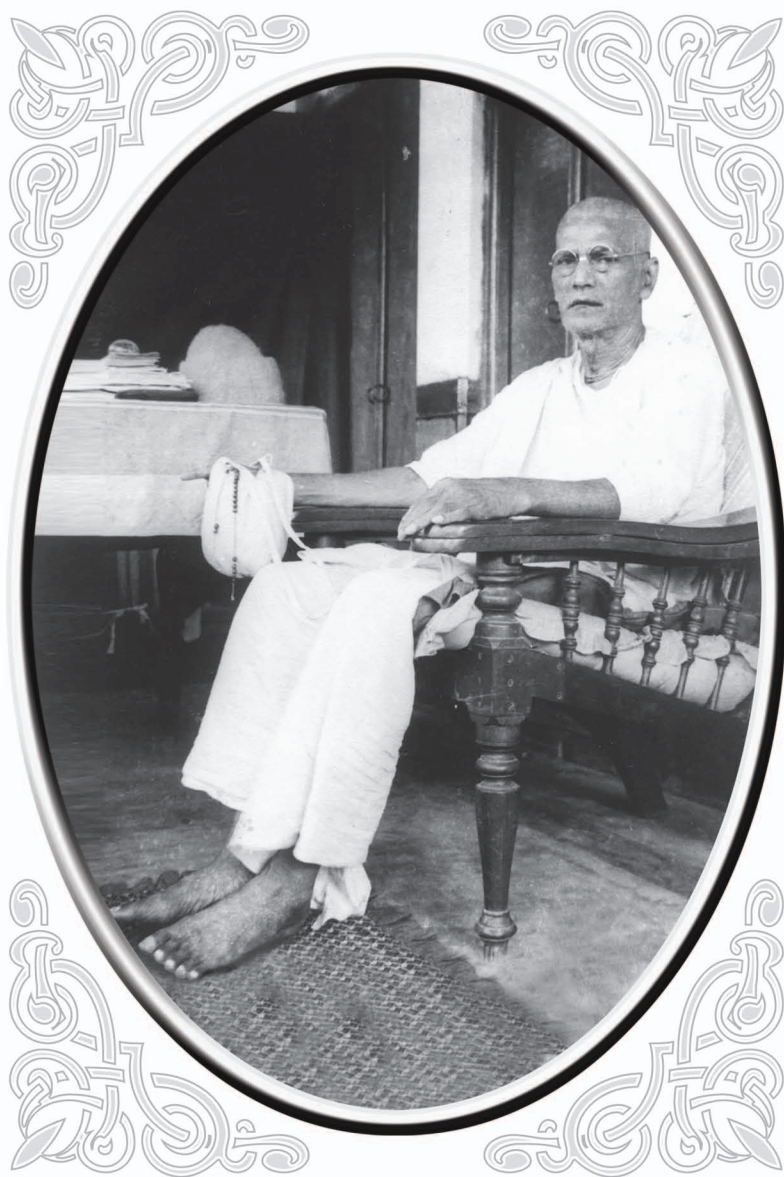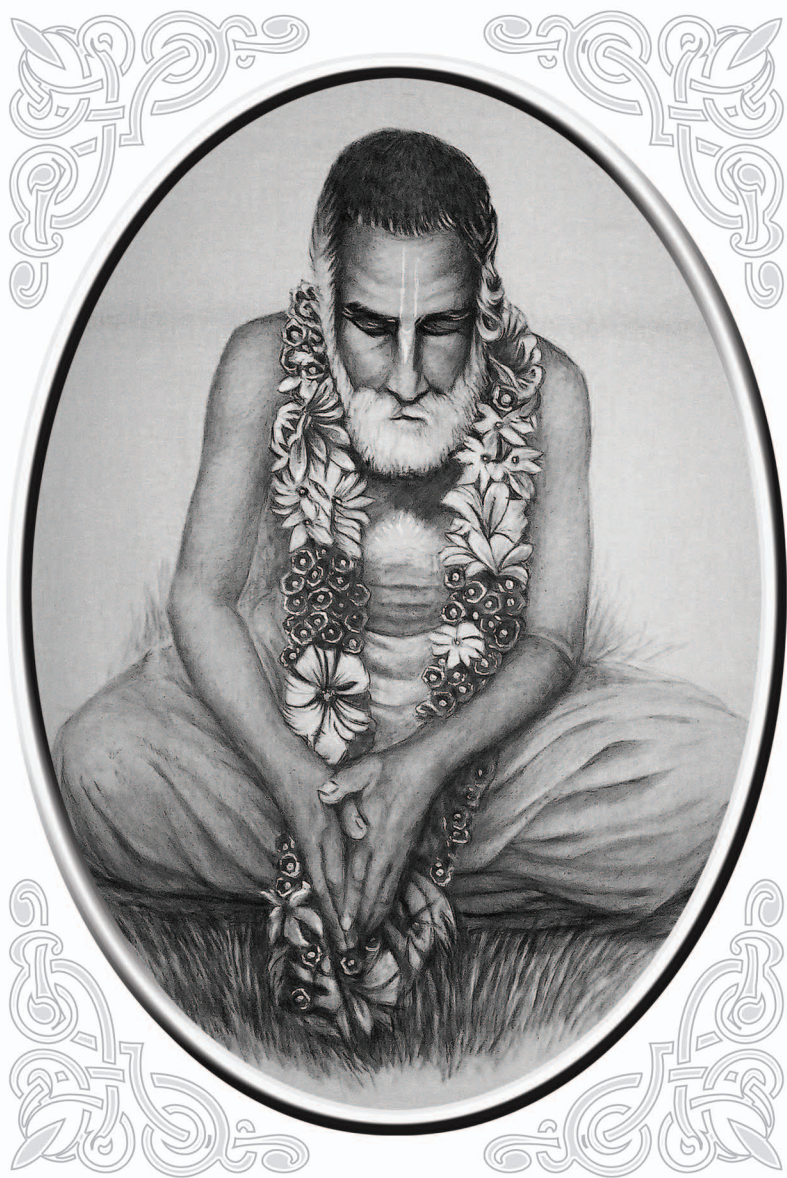
श्रीश्रीगोद्रुमचन्द्राय नमः

प्रेम–प्रदीप

प्रथम प्रभा

हरिदास बाबाजीके साथ प्रेमदास बाबाजीका मिलन

एकबार मधुमासके प्रारम्भमें प्रचण्ड किरणमाली अदितिनन्दन सूर्यदेवके अस्त होनेपर सन्ध्या–वन्दनादि समाप्तकर कृष्णभक्त–शिरोमणि श्रीहरिदास बाबाजी अपने कुञ्जसे बाहर आकर तपनतनया यमुनाके तटपर बने हुए पथपर चलने लगे। चलते–चलते प्रेमानन्दमें बाबाजीके हृदयमें कितने अनिर्वचनीय भाव उठने लगे—उनका वर्णन करना दुःसाध्य है। किसी एक स्थानपर बाबाजी हरिलीलाका स्मरण करा देनेवाले रजःपुञ्जका दर्शनकर वहाँ लोट–पोट खाते हुए "हा व्रजेन्द्रनन्दन! हे गोपीजनवल्लभ!" कहते हुए उच्चस्वरसे पुकारने लगे। उस समय बाबाजीके दोनों नेत्रोंसे अविरल आनन्दाश्रु प्रवाहित होने लगे, जिससे उनके वक्षःस्थलपर अङ्कित हरिनाम धुलने लगा। बाबाजीके समस्त अङ्ग पुलकित होकर कदम्ब पुष्पके समान सुशोभित होने लगे। हाथ इस प्रकार अवश हो गये कि वे जपमालाको भी नहीं सँभाल पा रहे थे। क्रमशः बाह्यज्ञानशून्य होकर बाबाजी उन्मत्तकी भाँति नृत्य करने लगे। स्वरभङ्ग, कम्प, स्वेद, वैवर्ण आदि सात्त्विक भावसमूह उदित होकर बाबाजीको सम्पूर्ण रूपमें प्रकृतिसे अतीत राज्यमें ले गये। उस समय बाबाजी बारम्बार निःश्वास छोड़ते हुए "हा कृष्ण! हा प्राणनाथ!" बोलते हुए क्रन्दन करने लगे। जिस समय हरिदास बाबाजी इस प्रकार वैकुण्ठानन्दका आस्वादन कर रहे थे, उस समय सुप्रसिद्ध प्रेमदास बाबाजी केशीघाटको पारकर वहाँ उपस्थित हुए। अकस्मात् वैष्णव दर्शनसे वैष्णवमें जिस अप्राकृत सख्यभावका उदय होता है, उस समय परस्परके दर्शनसे दोनोंके

श्रीमुखपर वही भाव नृत्य करने लगे। परस्पर किसी प्रकारके वार्त्तालाप होनेसे पूर्व ही नैसर्गिक (स्वाभाविक) प्रेम द्वारा आकृष्ट होकर दोनोंके पवित्र शरीर परस्पर आलिङ्गनबद्ध हो गये। दोनोंके नयनाश्रुसे दोनों ही भीग गये। कुछ समयके बाद दोनों ही एक-दूसरेको देखकर आपसमें आनन्दमय वार्त्तालाप करने लगे।

हरिदास और प्रेमदास बाबाजीका कथोपकथन

प्रेमदास बाबाजीने कहा—"बाबाजी! कई दिनोंसे आपका दर्शन प्राप्त नहीं कर पानेके कारण मेरा चित्त विकल हो रहा था। इसलिए आज आपका दर्शनकर पवित्र होनेकी इच्छासे आपके कुञ्जमें आ रहा था। कई दिन हुए मैं जावट, नन्दग्राम इत्यादि व्रजके गाँवोंमें भ्रमण कर रहा था।"

हरिदास बाबाजीने प्रत्युत्तर दिया—"बाबाजी! आपका दर्शन पाना क्या कम सौभाग्यकी बात है। श्रीपण्डित बाबाजीके साथ साक्षात्कार करनेके लिए मैं कई दिनों तक गोवर्द्धनमें रह रहा था। आज प्रातः ही वहाँसे आया हूँ। आपके श्रीचरणोंका दर्शनकर मैंने तीर्थयात्राका फल प्राप्त कर लिया।"

पण्डित बाबाजीका नाम श्रवण करनेमात्रसे प्रेमदास बाबाजीका ऊर्ध्वपुण्ड्रसे शोभित मुखमण्डल प्रेमसे परिपूर्ण हो गया। जिस समय प्रेमदास बाबाजीने भेक-धारणकर पण्डित बाबाजीके निकट श्रीहरिभक्तिरसामृतसिन्धु और श्रीउज्ज्वलनीलमणि नामक दोनों ग्रन्थका पाठ किया था, उस पूर्व कालका स्मरणकर एक अपूर्व भाव द्वारा उन्होंने पण्डित बाबाजीके प्रति अकृत्रिम भक्तिका परिचय दिया। कुछ समय तक मौन रहनेके उपरान्त प्रेमदास बाबाजीने कहा—"बाबाजी! आजकल पण्डित बाबाजीकी विद्वत्-सभामें किन-किन विषयोंकी आलोचना हो रही है, मेरी नितान्त अभिलाषा है कि आपके साथ एकबार उनके पास जाऊँ।"

पण्डित बाबाजीका प्रसङ्ग तथा भक्तोंके द्वाराकी जानेवाली कर्म और ज्ञानकी आलोचना भी हरिकथा

इस बातको सुननेमात्रसे ही हरिदास बाबाजी प्रेमदास बाबाजीको प्रेमालिङ्गन प्रदान करते हुए कहने लगे—"बाबाजी! पण्डित बाबाजीके समस्त कार्य ही अलौकिक हैं। मैं केवल एक दिनके लिए ही उनके पास गया था, किन्तु सात दिनों तक उनके चरणोंका त्याग न कर सका। उनकी पवित्र गुफामें आजकल अनेक महानुभव वैष्णव उपस्थित हैं। ऐसा सोचता हूँ कि वे महानुभाव आगामी कुम्भ मेले तक वहीं रहेंगे। प्रतिदिन वहाँ नये-नये विषयोंकी आलोचना होती है। ज्ञान सम्बन्धीय, कर्म सम्बन्धीय और शुद्धभक्ति सम्बन्धीय नाना प्रकारके विषयोंके प्रश्नोत्तर होते हैं।"

इतना कहनेके बाद प्रेमदास बाबाजीने सहसा कहा—"बाबाजी हमलोगोंने सुना है कि परम भागवतगण केवल हरिरसास्वादनमें ही प्रमत्त रहते हैं। कर्म-ज्ञान-सम्बन्धी प्रश्नोत्तरमें प्रवृत्त नहीं होते हैं। तो फिर क्यों हमारे परमाराध्य पण्डित बाबाजी महोदय इस प्रकारके प्रश्नोत्तरमें अपना समय व्यतीत करते हैं?"

हरिदास बाबाजीने कहा—"बाबाजी! मेरे भी पाषण्ड मनमें इस प्रकारका संशय हुआ था। किन्तु जब पण्डित बाबाजीकी पवित्र सभामें इन समस्त प्रश्नोत्तरोंको श्रवण किया, उस समय यह जान पाया कि कृष्णभक्तोंके द्वारा आलोचित कर्म-ज्ञान-सम्बन्धी समस्त कथा भी हरिकथा-विशेष ही है। बहिर्मुख लोगोंकी बहिर्मुख कथाके समान ये कथाएँ चित्तको चञ्चल नहीं करती, बल्कि वैष्णवसभामें इन सभी कथाओंको निरन्तर श्रवण करनेसे जीवके कर्मबन्धन तथा ज्ञानबन्धन दूर हो जाते हैं।"

हरिदास बाबाजीकी बात श्रवण करनेमात्रसे प्रेमदास बाबाजी विलाप करते हुए कहने लगे—"बाबाजी महाशय आपका सिद्धान्त कैसा अमृतस्वरूप है और होगा भी क्यों नहीं? आप श्रीनवद्वीप धामवासी सिद्ध गोवर्द्धनदास बाबाजीके अतिप्रिय शिष्यके रूपमें तीनों

मण्डलों (व्रजमण्डल, गौड़मण्डल और क्षेत्रमण्डल) में प्रसिद्ध हैं। आपकी कृपा होनेपर क्या किसीका कोई संशय रह सकता है? जब आपके चरणोंके प्रसादसे सुप्रसिद्ध न्यायशास्त्रके अध्यापक 'श्रीलोकनाथ न्यायभूषण' नामके भट्टाचार्य महाशयने न्यायशास्त्रके अन्धकूपसे उद्धार पाकर 'श्रीगोविन्ददास क्षेत्रवासी' नाम ग्रहणकर सभी क्लेशोंको दूर करनेवाले वैष्णवधर्मका आश्रय ग्रहण किया है, तब संशय दूर करनेके कार्यमें आपके लिए क्या कुछ असाध्य है? चलें, आज ही हमलोग हरिगुण–गान करते–करते गिरि–गोवर्द्धनकी तलहटीमें प्रवेश करें।"

कीर्त्तन करते–करते हरिदास और प्रेमदास बाबाजीका श्रीगोवर्द्धनकी ओर प्रस्थान

इस वार्त्तालापके समाप्त होते–न–होते ही दोनोंने हरिगुणगानमें मत्त होकर नृत्य करते–करते गोवर्द्धनकी यात्रा की। जिस समय दोनों बाबाजी गाते–गाते जा रहे थे, उस समय मानो प्रकृतिदेवी उनके गीतको श्रवणकर प्रफुल्लित होकर मुस्कराते हुए जगत्‌की शोभाका विस्तार करने लगीं। वसन्तके अन्तिमकालकी मलयवायु अत्यन्त कोमल भावसे बहने लगी। द्विजराज कुमुदपति (चन्द्रमा) अत्यधिक स्वच्छ किरणोंसे दोनों बाबाजीके वैष्णव–कलेवरके ऊपर सुधावर्षण करने लगे। कलिन्दनन्दिनी कालिन्दी (यमुना) हरिगुण–गानसे मोहित होकर कलकल स्वरसे दोनों बाबाजीके गानमें ताल देने लगीं। देवदारु आदि उच्च वृक्षसमूह सन्–सन् शब्दसे उड्डीयमान होकर हरिकीर्त्तनकी पताकाके समान शोभाका विस्तार करने लगे। दोनों बाबाजी उद्दण्ड नृत्य करते हुए चलने लगे। वे हरिगुणगानमें इतने मत्त हो गये कि सुखमयी रात्रि कब व्यतीत हो गयी तथा कब सुबह हो गयी, इसे भी वे नहीं जान सके। जब उनका नृत्य–गीत भङ्ग हुआ, तब उन बाबाजी महाशयोंने देखा कि अंशुमाली (सूर्य) पूर्व दिशाको प्रफुल्लितकर गोवर्द्धनके एक प्रान्तमें उदित हो गये हैं।

गोवर्द्धन पर्वतसे कुछ दूर समस्त प्रातः कालीन क्रियाओंको समाप्तकर दिनके चार दण्डकाल समाप्त होते–न–होते ही वे पण्डित बाबाजीकी गुफामें प्रवेश कर गये।

प्रथम प्रभा समाप्त

द्वितीय प्रभा

हरिदास और प्रेमदास बाबाजीका गोवर्द्धनमें पण्डित बाबाजीकी गुफामें प्रवेश तथा उनके साथ सभा–मण्डपमें आगमन एवं वीरभूमके बाबाजीका कीर्त्तन

हरिदास और प्रेमदास बाबाजी सम्पूर्ण रूपसे सुसज्जित होकर पण्डित बाबाजीके आश्रममें उपस्थित हुए। गोपीचन्दनसे बना हुआ उर्द्ध्वपुण्ड्र उनके ललाटपर सुशोभित हो रहा था, गलेमें त्रिकण्ठी तुलसीमाला लक्षित हो रही थी तथा वे दाहिने हाथमें माला–झोलीके अन्दर श्रीहरिनामकी मालापर निरन्तर नाम–संख्या कर रहे थे। कौपीन और बहिर्वाससे उनका अधोदेश (नाभिके नीचेवाला आधा शरीर) ढका हुआ था, सिरके ऊपर शिखा सुशोभित हो रही थी तथा सभी अङ्ग हरिनामसे अङ्कित थे। "हरे कृष्ण, हरे कृष्ण"—ये दो शब्द उनके अधरोंसे निकल रहे थे। यद्यपि वे रातमें सोये नहीं थे और उन्होंने लगभग सोलह कोसका रास्ता तय किया था, तथापि वे श्रान्त अथवा क्लान्त नहीं लग रहे थे। उनमें वैष्णवका दर्शन करनेकी उत्कण्ठा इतनी प्रबल थी कि गुफाके द्वारपर बैठे हुए अनेक लोगोंपर उनका ध्यान ही नहीं गया।

यद्यपि पण्डित बाबाजी गुफाके अन्दर भजन करते थे, तथापि अन्यान्य साधुओंसे मिलनेके लिए उन्होंने गुफाके बाहर कुछेक कुटीर और बीचमें एक माधवी लताके मण्डपका निर्माण करवाया था। दोनों बाबाजीने गुफामें प्रवेशकर पण्डित बाबाजीको दण्डवत्–प्रणाम करके उनका दर्शन किया। पण्डित बाबाजी भी उन दोनोंको देखकर अत्यन्त आनन्दित हुए और कुछ क्षणके बाद ही अन्यान्य साधुओंके समागमकी बातको सुनकर दोनों बाबाजीको साथ लेकर मण्डपमें उपस्थित हुए। उस समय वीरभूम निवासी कुछ वैष्णव आगे बैठकर बाबाजीकी अनुमति प्राप्तकर गीतावलीका एक पद कीर्त्तन करने लगे।

(ललित राग)

नाकर्णयति सुहृदुपदेशम्।
माधव चाटू पठनमपि लेशम्॥१॥
सीदति सखि मम हृदयमधीरम्।
यदभजमिह नहि गोकुल-वीरम्॥२॥
नालोकयमर्पितमुरू हारम्।
प्रणयन्तञ्च दयितमनुवारम्॥३॥
हन्त सनातन-गुणमभियान्तम्।
किमधारयमहमुरसिन-कान्तम् ॥४॥

[हाय! मैंने अत्यन्त प्रिय ललिता आदि सुहृद् सखियोंका उपदेश नहीं सुना। माधवने कितने ही प्रियवचन बोले, किन्तु मैंने किञ्चित्मात्र भी श्रवण नहीं किया॥१॥

हे सखि! मैंने इस कुञ्जमें गोकुलके वीरकी सेवा नहीं की, इसीलिए मेरा अधीर हृदय फटा जा रहा है॥२॥

अहो! उस माधवने मुझे अति उत्तम हार अर्पण किया तथा बार-बार मुझे प्रणाम भी किया, किन्तु मैंने एकबार भी उसके प्रति कटाक्षपात नहीं किया॥३॥

हाय! सनातन (नित्य) गुणोंसे युक्त कान्तके स्वयं समीप आनेपर भी मैंने उन्हें अपने वक्षःस्थलपर धारण क्यों नहीं किया?॥४॥

(श्रील रूप गोस्वामीकृत स्तवावलीमें गीतावलीके अन्तर्गत ३१वाँ गीत)]

कृष्णसेवाके द्वारा ही शान्ति प्राप्त होती है, यम-नियम आदि योगके द्वारा नहीं

कीर्त्तन श्रवणकर सभी परितृप्त हुए और गायकने बाबाजीको आलिङ्गन प्रदान किया। कीर्त्तन समाप्त होने तक शनैः-शनैः अनेक साधु महात्मा वहाँ उपस्थित होकर बैठने लगे और नाना प्रकारकी कथा-वार्त्ताएँ होने लगीं।

उस समय हरिदास बाबाजीने कहा—"श्रीकृष्णके सेवकगण ही धन्य हैं। वे जहाँ कहीं रहें, उनका मार्ग ही उचित है, हम उनके दासानुदास हैं।"

इस कथनकी पुष्टि करते हुए प्रेमदास बाबाजीने कहा—"बाबाजीकी बात ठीक है, श्रीमद्भागवतमें भी इसी प्रकार कहा गया है—

यमादिभिर्योगपथैः काम-लोभहतो मुहुः।
मुकुन्द-सेवया यद्वत्तथाद्धात्मा न शाम्यति॥
(श्रीमद्भा॰ १/६/३६)

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि—ये अष्टाङ्गयोग हैं। इनका अभ्यास करनेसे आत्मा शान्तिको तो प्राप्त कर सकता है, किन्तु इन प्रक्रियाओंमेंसे किसी-किसी अवस्थामें साधक काम और लोभके वशीभूत होकर चरमफल शान्ति प्राप्त करने तक न पहुँचकर, अवान्तर फल 'विभूति' भोग करते-करते पतित हो जाता है। किन्तु, श्रीकृष्ण-सेवाक्रममें किसी अन्य फलकी आशङ्का नहीं रहनेके कारण श्रीकृष्ण-सेवकको शान्ति निश्चित रूपसे प्राप्त होती है।"

सभामें बैठे हुए योगीके द्वारा अर्चनकी अपेक्षा योगके श्रेष्ठत्वका वर्णन करनेके उपरान्त मीमांसाके लिए प्रार्थना

उस समय पण्डित बाबाजीकी सभामें एक अष्टाङ्गयोगी उपस्थित थे। यद्यपि वे वैष्णव थे, तथापि बहुत समय तक प्राणायामका अभ्यासकर सिद्ध हुए थे। फलतः वे नवधाभक्तिकी अपेक्षा अष्टाङ्गयोगकी अधिक महत्ताको स्वीकार करते थे। उन्होंने प्रेमदास बाबाजीकी बातको श्रवणकर कुछ असन्तुष्ट होते हुए कहा—"बाबाजी! योगशास्त्रकी अवहेलना न करें। योगिगण चिरजीवी होते हुए भी आहार-निद्राका त्याग करके रह सकते हैं। वे जिस प्रकार प्रगाढ़ रूपसे श्रीकृष्णका भजन करेंगे, क्या आप उस प्रकारसे कर पायेंगे? अतएव योगमार्गको अर्चनमार्गसे श्रेष्ठ जानें।"

वैष्णव स्वभावतः तर्क करना अच्छा नहीं समझते, उसपर भी भक्तिके अङ्गोंको योगके अङ्गोंकी अपेक्षा साधारण श्रवणकर योगी–वैष्णवकी बातमें किसी की भी रुचि नहीं हुई। वे सभी निस्तब्ध रहे। इससे योगीने अपने आपको अपमानित अनुभवकर पण्डित बाबाजीसे इस विषयमें सिद्धान्त बतानेके लिए प्रार्थना की।

पण्डित बाबाजीके द्वारा योगमार्गकी अपेक्षा भक्तिमार्गके श्रेष्ठत्व मूलक विचारका प्रदर्शन

सर्वप्रथम पण्डित बाबाजीने तर्कमें प्रवेश करना स्वीकार नहीं किया, किन्तु जब योगीने उन्हें बारम्बार आश्वासन दिया कि बाबाजीके द्वारा बताये गये सिद्धान्तको अवश्य ही ग्रहण करेंगे, तब पण्डित बाबाजी कहने लगे—"जो भगवान् समस्त योगमार्ग और भक्तिमार्गके एकमात्र उद्देश्य हैं, उनकी ही जीवमात्र उपासना करते हैं। स्थूल विचारसे जीव दो प्रकारके हैं—शुद्धजीव और बद्धजीव। जड़ीय सम्बन्धरहित आत्माका नाम शुद्धजीव है। जड़ीय सम्बन्धविशिष्ट आत्माका नाम बद्धजीव है। बद्धजीव ही साधक हैं। शुद्धजीवको साधन नहीं करना पड़ता। बद्ध और शुद्ध जीवमें मूल भेद यही है कि शुद्धजीव विशुद्ध आत्मधर्ममें अवस्थित होता है, आत्मधर्मका अनुष्ठान ही उनका कार्य एवं निरुपाधिक आनन्द ही उनका स्वभाव है। बद्धजीवने जड़ीय सम्बन्धसे युक्त होकर जड़ और आत्मधर्म–मिश्रित एक औपाधिक धर्मको स्वीकार किया है। औपाधिक धर्मको परित्यागकर अपने निरुपाधिक धर्मको प्राप्त करनेका नाम मोक्ष है। विशुद्ध प्रेम ही आत्माका निरुपाधिक धर्म है। विशुद्ध प्रेमकी प्राप्ति और मोक्ष भिन्न–भिन्न तत्त्व नहीं हो सकते। योगमार्गमें जिस मोक्षका अनुसन्धान है, वही भक्तिमार्गका प्रेमरूपी फल है। अतएव दोनों साधनोंका चरमफल एक ही है। इसलिए शास्त्रमें भक्तप्रधान शुकदेवको महायोगी और योगी–प्रधान महादेवको परम भक्तके रूपमें उल्लेख किया गया है।

"योग और भक्तिमार्गमें इतना ही अन्तर है कि योगमार्गमें कषाय अर्थात् आत्माकी उपाधि दूरकर समाधिकी अवस्थामें प्रेमको उद्दीप्त किया जाता है। इसमें इस बातकी आशङ्का है कि उपाधि-निवृत्तिकी चेष्टा करते-करते बहुत समय व्यतीत हो जाता है और स्थलविशेषमें चरमफल प्राप्त होनेके पूर्व ही किसी-न-किसी क्षुद्रफलमें आबद्ध होकर साधक भ्रष्ट हो जाता है। दूसरी ओर, भक्तिमार्गमें प्रेमकी ही साक्षात् आलोचना होती है। भक्ति प्रेमतत्त्वका अनुशीलनमात्र है। जहाँ सभी अनुष्ठान ही चरम फलके अनुशीलन हैं, वहाँ अवान्तर क्षुद्र फलकी आशङ्का नहीं है। साधन ही फल और फल ही साधन है। अतएव भक्तिमार्ग योगमार्गकी अपेक्षा सहज और सर्वतोभावेन आश्रय ग्रहण करने योग्य है।

योगमार्गकी हेयताका प्रदर्शन

"योगमार्गमें जो भौतिक जगत्के ऊपर आधिपत्य होता है, वह भी औपाधिक फलमात्र है। इसमें चरमफलकी बात तो दूर रहे, कभी-कभी अड़चन लक्षित होती है। योगमार्गमें पद-पदमें विघ्न है। (१) यम-नियम साधनकालमें धार्मिकतारूप फलका उदय होता है, उसमें एवं उसके क्षुद्र फलमें अवस्थित होकर अनेक लोग ही धार्मिकके नामसे परिचित तो होते हैं, परन्तु प्रेमरूप फल—साधनमें प्रवृत्त नहीं होते। (२) 'आसन' और 'प्राणायाम' के कालमें अनेक क्षण तक कुम्भक करनेमें समर्थ होकर दीर्घजीवन और रोगशून्यताको प्राप्त करते हैं। यदि उसमें प्रेम-सम्बन्ध नहीं होता, तो वह दीर्घ-जीवन और रोगशून्यता केवल अनर्थोंका ही मूल कारण बन जाते हैं। (३) 'प्रत्याहार' द्वारा इन्द्रियोंका संयम होनेपर भी यदि प्रेमका अभाव होता है, तो उसे शुष्क और तुच्छ वैराग्य कहा जाता है। क्योंकि, परमार्थके लिए त्याग या ग्रहण दोनों ही समान फल प्रदान करनेवाले हैं। निरर्थक त्याग केवल जीवको पाषाणवत बना देता है। (४) 'ध्यान', 'धारणा' और 'समाधि' के समय यदि जड़ चिन्ता तो दूर

हो जाये, परन्तु प्रेमका उदय नहीं हो, तो चैतन्यरूप जीवके वास्तविक अस्तित्वका लोप हो जाता है। 'मैं ब्रह्म हूँ' यह ज्ञान यदि विशुद्ध प्रेमको उत्पन्न नहीं करा सका, तब वह अपने–अस्तित्वका ही विनाशक हो जाता है। अतः आप ही विवेचना करके देखिये कि योगका चरम उद्देश्य उत्कृष्ट होनेपर भी मार्ग बहुत कण्टकमय है। भक्तिमार्गमें इस प्रकारके काँटे नहीं हैं। आप वैष्णव होनेके साथ–साथ योगी हैं, अतएव आप मेरी बातको पक्षपातसे रहित होनेपर समझ पायेंगे।"

पण्डित–बाबाजीकी बात समाप्त होते–न–होते ही समस्त वैष्णवोंने कहा—"साधु, साधु।"

यद्यपि योगी बाबाजी सन्तुष्ट हुए, तथापि उनके द्वारा इन्द्रिय–निग्रहके लिए नवधाभक्तिकी अपेक्षा योगकी प्रयोजनीयताका ज्ञापन

योगी बाबाजीने कहा—"बाबाजी! यद्यपि आपका सिद्धान्त उत्तम है, किन्तु उसके सम्बन्धमें मेरा और एक प्रश्न है, उसे कह रहा हूँ—मैंने योग शिक्षा करनेके पूर्व श्रवण–कीर्त्तनादि नौ प्रकारके भक्तिके अङ्गोंका भलीभाँति अभ्यास किया था। किन्तु क्या बताऊँ, मेरी इन्द्रियोंकी चेष्टा इतनी प्रबल थी कि मैं सभी कार्योंमें ही इन्द्रिय–तृप्तिका अनुसन्धान करता था। विशेषतः वैष्णवधर्ममें जिस प्रकारसे शृङ्गारप्रेमका उपदेश है, उसमें मेरा चित्त निरूपाधिक नहीं हो पाता था। मैंने 'प्रत्याहार' का साधनकर शृङ्गाररसका आस्वादन किया है, अब और विषय–भोगकी लेशमात्र वासना नहीं होती। मेरे स्वभावका परिवर्तन हुआ है। अर्चन मार्गमें जो प्राणायामकी व्यवस्था देखी जाती है, लगता है वह वैष्णवोंके लिए प्रत्याहार–साधक रूपसे भक्तिमार्गमें उपदिष्ट हुई है। अतएव मेरे विचारसे योगमार्गका प्रयोजन है।"

शुष्क चिन्ता अथवा अभ्यासके द्वारा भक्तिके अङ्ग–समूहोंका कर्माङ्गोंकी भाँति भोगके लिए पालन करनेपर साधकका पतन अवश्यभावी

पण्डित बाबाजीने योगी बाबाजीकी कथाको श्रवणकर कुछ क्षण चिन्तन किया। थोड़ी देरके बाद उन्होंने कहा—"बाबाजी! आप धन्य है, क्योंकि 'प्रत्याहार' का अभ्यास करनेपर भी आप रसतत्त्वको भूले नहीं। शुष्क चिन्ता एवं शुष्क अभ्यासके द्वारा आत्माका अनेक स्थानोंमें पतन हो जाता है; क्योंकि आत्मा रसमय है, वह कभी भी शुष्कता सहन नहीं कर सकता। आत्मा अनुरागी है, इसी कारण बद्ध आत्मा उपयुक्त विषयसे च्युत होकर इतर विषयोंमें अनुराग करता है; इसीलिए आत्म–अनुशीलन सुदूरवर्ती होनेसे विषय–भोग ही प्रबल हो जाता है। इन्द्रिय–परतन्त्र आत्मा जब अपने उपयुक्त रसका दर्शन करता है, तब उसमें स्वभावसिद्ध रतिका उदय होता है, जिससे जड़ीय रति दूर हो जाती है। परतत्त्वमें प्रेमकी आलोचना ही भक्तिमार्ग है, उसमें अनुराग जितना गाढ़ा होता है, उतनी मात्रामें ही इन्द्रिय चेष्टा स्वाभाविक रूपसे कम हो जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि जब आपने भक्तिमार्गमें प्रवेश किया, उस समय आपका यथार्थ साधुसङ्ग नहीं हुआ था। इसी कारणसे आप भक्तिरस प्राप्त नहीं कर सके। भक्तिके अङ्गोंका कर्म–अङ्गोंके समान शुष्क रूपसे और स्वार्थपरताके साथ साधन करते थे, इसलिए उससे परानन्द रसका कुछ भी उदय नहीं हुआ। लगता है, उसीके कारण ही आपकी इन्द्रिय लालसा बढ़ गयी थी। उस अवस्थामें योगमार्गसे कुछ उपकारकी सम्भावना होती है। भक्तिसाधकोंके लिए भक्तोंके सङ्गमें भक्तिका रसास्वादन करना ही प्रयोजन है। (शुद्धभक्तोंके आनुगत्यमें भक्तिके अङ्गोंका ठीकसे पालन करनेपर) समस्त जड़ीय विषय–भोग करनेपर भी भोगका फल जो भोगवाञ्छा है, वह उदित नहीं होती। भक्तोंका विषय–भोग ही विषयवाञ्छा–त्यागका प्रधान हेतु है।"

बाबाजीके इतना कहनेपर ही वैष्णव योगीने कहा—“बाबाजी! मैं इस विषयमें कुछ भी जानता नहीं था। मैं सन्ध्याके समय आकर जो कुछ संशय है उन्हें दूर करनेका प्रयत्न करूँगा। आज कलकत्तासे एक सज्जन आनेवाले हैं, मुझे अब जानेकी आज्ञा दीजिये। आप मुझपर कृपा रखियेगा।”

योगी बाबाजीके बाहर जानेके पश्चात् बाबाजीकी सभा भङ्ग हो गयी।

द्वितीय प्रभा समाप्त

तृतीय प्रभा

मल्लिक महाशय, नेरन बाबू और आनन्द बाबूका योगी बाबाजीके कुञ्जमें आगमन

योगी बाबाजी पण्डित बाबाजीके आश्रमसे निकलकर रास्तेंमें सूर्यको देखकर ये जान पाये कि समय प्रायः डेढ़ प्रहर (दस, साढ़े दस) हो गया है। वे कुछ तेजीसे अपने कुञ्जकी ओर चलने लगे। तमाल वृक्षके निकट आकर उन्होंने देखा कि बङ्गालसे तीन सज्जन आ रहे हैं। उसी समय उन्होंने सोचा कि इनमेंसे ही कोई मल्लिक महाशय हैं। पहलेसे ही उनके आनेका संवाद पाकर बाबाजीने कुञ्जको झाड़-बुहारकर साफ कर रखा था। तीनों सज्जन जब निकट आये, तब बाबाजीने पूछा—"आपलोगोंका निवास कहाँ है? तथा आपलोग कहाँ जायेंगे?" उन्हींमेंसे एक अधिक आयुके तथा विज्ञ व्यक्ति थे, जिनकी आयु लगभग ६० वर्ष थी। उनके बाल और दाढ़ी प्रायः सफेद हो गये थे, शरीरपर मलमलका कुर्त्ता, धोती, चादर, हाथमें बैग और पावोंमें चीनके जूते थे। अन्य दो लोगोंकी आयु भी ३०-३२ वर्षके आस-पास थी, उनकी दाढ़ी थी। नाकपर चश्मा तथा हाथमें घड़ी और बैग था, पैरोंमें विलायती जूते थे। सभीके माथेपर छोटी-छोटी छतरी थी। वे विज्ञ व्यक्ति थोड़े आगे बढ़कर बोले—"हम लोग कलकत्तासे आये हैं, योगी बाबाजीके आश्रममें जायेंगे। उन्हें पहले ही निताई दास बाबाजीके द्वारा पत्र भेजा जा चुका है।"

सुनते ही योगी बाबाजीने कहा—"तब आपलोग मुझे ही ढूँढ़ रहे हैं, क्या आप मल्लिक महाशय हैं?" बाबूने कहा—"हाँ।" यह सुनकर बाबाजी उन्हें यत्नपूर्वक अपने कुञ्जमें ले गये। कुञ्ज अतिशय पवित्र था। चारों ओर वृक्षका घेरा था, बीचमें तीन-चार कुटियाँ थीं और एक ठाकुरजीका घर था। अपने शिष्योंको

आतिथ्य–सेवामें नियुक्तकर बाबाजी उनलोगोंके लिए प्रसाद–सेवाकी व्यवस्था करने लगे। बाबूलोगोंने मानसीगङ्गामें स्नानादि कर प्रसाद सेवा की। भोजनके उपरान्त वे लोग एक पञ्चवटी[१] के नीचे परस्पर वार्त्तालाप करने लगे।

मल्लिक महाशयने कहा—"बाबाजी महाशय! कलकत्तामें सभी आपके यशका गान करते हैं। हमलोग कुछ ज्ञानोपदेश प्राप्त करनेकी आशासे आपके श्रीचरणमें आये हैं।"

बाबाजी आनन्दित होकर कहने लगे—"महाशय! आपलोग महात्मा हैं। नित्यानन्द दास बाबाजीने मुझे लिखा है कि आपके समान विद्यानुरागी हिन्दु व्यक्ति पूरे कलकत्तामें नहीं है। आपने अनेक योगशास्त्रोंका अध्ययनकर योगाभ्यास भी किया है।"

मल्लिक बाबूके द्वारा आत्मपरिचय प्रदान

मल्लिक बाबू कुछ हँसते हुए कहने लगे—"आज मेरा शुभ दिन है। आपके जैसे योगीके साथ मेरा साक्षात्कार हुआ।" ऐसा कहते–कहते मल्लिक बाबू योगी बाबाजीके चरणोंमें गिरकर कहने लगे—"बाबाजी! मेरा एक अपराध हुआ है, क्षमा कीजियेगा। जब मैंने आपको पहली बार देखा उस समय मैंने आपको दण्डवत्–प्रणाम नहीं किया था। बाबाजी! आजकल कलकत्तामें प्राचीन व्यवहार इतना अधिक लुप्त हो गया है कि हमलोग भी गुरुजनोंको देखकर दण्डवत्–प्रणाम आदि नहीं करते हैं। अभी निर्जनमें आपके चरणरजके स्पर्शका सुख अनुभव कर रहा हूँ। मेरा परिचय इस प्रकार है—बचपनमें मैं बहुत संशयी था, बादमें ईसाइयोंकी बातोंको सुनकर उनके धर्मको अपने धर्मकी अपेक्षा श्रेष्ठ मानता था। मैं बहुत दिनों तक गिरिजाघरमें जाकर भी उपासना करता था। बादमें राजा राममोहन रायके द्वारा प्रचारित नये ब्राह्मधर्मका भी मैंने अवलम्बन किया। कुछ दिन हुए विलायती भूतविद्या तथा 'क्लेयार

[१] पीपल, बेल, वट, अशोक और आँवला—ये पाँच वृक्ष जहाँपर एक ही स्थानपर लगे होते हैं, उसे पञ्चवटी कहते हैं।

भयेन्स' और 'मेसमेरिज्म' नामक समाधि-विशेषका भी अभ्यास करता हूँ। इस विद्याका भलीभाँति साधन करनेके लिए मैं पिछले वर्ष मद्रासमें 'मैडम लॉरेन्स' के निकट गया था। उससे मैं मृत व्यक्तिको इच्छा करते ही जीवित कर सकता हूँ तथा बहुत दूरका संवाद भी थोड़ी-सी चेष्टासे ही प्राप्त कर सकता हूँ। मेरी इन क्षमताओंको देखकर एकदिन नित्यानन्द दास बाबाजीने कहा—'बाबू! यदि आप गोवर्द्धनमें रहनेवाले योगी बाबाजीके पास जा सकें, तो अनेक प्रकारकी अलौकिक शक्तिको अर्जित कर सकते हैं।' उसी समयसे मुझे हिन्दू-शास्त्रपर दृढ़ विश्वास हुआ है। मैं अब माँस, मछली इत्यादि नहीं खाता हूँ और सदैव पवित्र रहता हूँ। इस प्रकार चरित्रवान होनेके कारण मेरे अन्दर और अधिक सामर्थ्य उत्पन्न हुआ है। अब मैं अनेक प्रकारके हिन्दू व्रतोंका भी पालन करता हूँ, गङ्गा-जलका पान करता हूँ। विजातीय लोगोंके द्वारा स्पर्श किये हुए खाद्य पदार्थोंको भी ग्रहण नहीं करता हूँ। प्रातः और सन्ध्या कालमें आह्निक करता हूँ।

नरेन बाबू और आनन्द बाबूका परिचय

"मेरे साथ नरेन बाबू और आनन्द बाबू आये हैं। यद्यपि ये लोग ब्राह्मधर्मके प्रति श्रद्धा करते हैं, तथापि योगशास्त्रमें जो कुछ सत्य है, उसे स्वीकार करनेमें भी कुण्ठित नहीं हैं। मैंने इनलोगोंको अनेक प्रकारके योगफल दिखाये हैं। ये लोग भी अभी मुझपर उसी प्रकार विश्वास करते हैं, जिस प्रकार ये अपने धर्माचार्यपर विश्वास करते हैं। हिन्दू तीर्थ प्रदेशोंमें आनेकी इन लोगोंकी इच्छा नहीं थी, क्योंकि यहाँ आनेपर अनेक प्रकारके रूढ़िवाद या अन्धविश्वासोंपर भी विश्वास करना पड़ता है। आज प्रसाद पानेके समय नरेन बाबूके मनमें कुछ कष्ट हो रहा था। यह उनके मुखके हाव-भावसे पता चल रहा था। जो भी हो, मैं समझता हूँ कि ये लोग भी मेरी भाँति अतिशीघ्र हिन्दू-शास्त्रपर श्रद्धा करेंगे। मैंने आपके चरणोंमें शरण ली है, आप मुझे राजयोगकी कुछ शिक्षा दें।"

संसारी लोगोंके सङ्गसे योगी बाबाजीके हृदयमें पतनका भय

मल्लिक बाबूकी प्रार्थना सुनकर कुछ हर्ष और विषादयुक्त होकर एक नया भाव प्रकाश करते हुए योगी बाबाजी बोले—"बाबूजी! मैं उदासीन हूँ, संसारके साथ मेरा इतना सम्बन्ध नहीं है। लगभग एक वर्ष तक अनाहारी होकर कुम्भकके बलपर मैं बद्रिकाश्रमके पर्वतकी एक गुफामें बैठा था। हठात् श्रीशुकदेव गोस्वामीके साथ मेरा साक्षात्कार हुआ। परम भागवत व्यासकुमारने मुझे व्रजधाम आनेका आदेश दिया। तभीसे मैं व्रजवासियोंके साथ कुछ–कुछ संसारी हो गया हूँ। तब भी अत्यधिक विषयी लोगोंके साथ वास नहीं करता हूँ। आपका पहनावा, आहार और सङ्ग अभी तक नितान्त संसारीके समान है। मुझे भय होता है कि अधिक संसार–सङ्ग करनेसे मैं योगभ्रष्ट न हो जाऊँ।"

मल्लिक महाशयका सङ्कल्प, वेश परिवर्त्तन और श्रीनाम ग्रहण तथा नरेन और आनन्द बाबूका ब्राह्मधर्ममें श्रद्धा होनेके कारण स्वतन्त्र आचरण

बाबाजीकी इस बातको सुनकर मल्लिक बाबूने कहा—"मैं आपके आदेशके अनुसार वेश और आहार आदि स्वीकार करनेके लिए तैयार हूँ, किन्तु मैं अपने दोनों साथियोंका परित्याग कैसे करूँ? मैं एक युक्ति सोच रहा हूँ—नरेन बाबू और आनन्द बाबूको दो–एक दिन यहाँ रखकर वृन्दावनके बङ्गीय समाजमें भेज दूँ और मैं छः महीने आपके चरणोंमें रहकर योगाभ्यास करूँ।"

नरेन बाबू और आनन्द बाबूने मल्लिक बाबूके इस प्रस्तावको सुनकर इसे हर्षसे स्वीकार करते हुए कहा कि "दो दिनोंमें ही हमलोग वृन्दावन चले जायेंगे। सेवक लोग भी वहाँ हमारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे।" अन्तमें यही विचार ही निश्चित हुआ।

जब नरेन बाबू और आनन्द बाबू प्रकृतिकी शोभा देखनेके उद्देश्यसे भ्रमण करने गये। तब बाबजीको एकान्तमें देखकर मल्लिक बाबू कहने लगे—"बाबाजी! उन दोनोंको अपने साथ लाना अच्छा

नहीं हुआ, क्योंकि उनकी वेशभूषाको देखकर सभी लोग उनकी अवहेलना करते हैं। यदि आप कृपा करें तो मैं शीघ्र ही इस अनार्य-संसर्गसे मुक्त हो पाऊँगा।"

बाबाजीने कहा—"बहुत-से वैष्णव वेशभूषा और संसर्ग देखकर ही लोगोंके सङ्गका परित्याग कर देते हैं। किन्तु, मेरी रीति ऐसी नहीं है। मैं यवन आदिके साथ भी एक स्थानमें रहनेमें कभी कुण्ठित नहीं होता हूँ। वैष्णवगण जातिविशेषसे द्वेष नहीं करते हैं, फिर भी सुविधाके लिए वैष्णव वेशभूषा और वैष्णवोचित व्यवहार स्वीकार करना कर्त्तव्य बोध होता है।"

एक दिनके उपदेशसे ही कभी कोई वैष्णव वेश स्वीकार नहीं करता, तथापि पूर्व संस्कारके कारण हो अथवा योगी बाबाजीके प्रति श्रद्धालु होनेके कारण हो, मल्लिक बाबूने तत्क्षणात् अपने पाँच रुपयेके कीमती चमड़ेके जूतोंको परित्याग कर दिया और गलेमें तुलसी, ललाटमें उर्ध्वपुण्ड्र धारणकर योगी बाबाजीको दण्डवत्-प्रणाम किया। (उन्हें इस प्रकार श्रद्धालु देखकर) बाबाजीने उन्हें हरिनाम मन्त्र जप करनेकी अनुमति प्रदान की तथा मल्लिक महाशय बाबाजीके निर्देशके अनुरूप वैसा ही करने लगे।

जब नरेन बाबू और आनन्द बाबू घूमकर लौट आये, तो कुछ दूरसे ही मल्लिक महाशयके रूपको देखकर कहने लगे—"अरे! यह क्या, हमलोगोंका यहाँ रहना किसी भी प्रकार उचित नहीं है। यद्यपि मल्लिक बाबूमें अनेक पाण्डित्य है और इन्होंने बहुत कुछ अनुसन्धान भी किया है, तथापि यह स्थिर चित्तवाले नहीं हैं। आज इन्होंने कैसा वेश धारण कर लिया? एक ही दिनमें इतना परिवर्त्तन क्यों हुआ? देखते हैं, आगे क्या होता है। हमलोग पवित्र ब्राह्मधर्मकी अवहेलना नहीं करेंगे। हम प्रकृतिके सौन्दर्यका दर्शन करते रहेंगे और मनुष्यके स्वभावकी परीक्षा करते रहेंगे।"

जब नरेन बाबू और आनन्द बाबू और निकट आये तो उन्हें देखकर मल्लिक महाशय थोड़ा अस्थिर होते हुए कहने लगे—"नरेन! देखो, मैं क्या हो गया? आनन्द! क्या तुम असन्तुष्ट हो रहे हो?"

नरेन और आनन्द बाबूने कहा—“आप हमारे श्रद्धाके पात्र हैं। आपके किसी कार्यसे हम दुःखित नहीं हैं।”

योगी बाबाजीके द्वारा तत्त्वकी जिज्ञासा करनेपर ब्राह्मचार्य नरेन बाबूके द्वारा हिन्दू धर्मके कुछेक दोषोंका प्रदर्शन

योगी बाबाजीने कहा—“आपलोग विद्वान् और धार्मिक हैं, किन्तु तत्त्वके विषयमें आपलोगोंने क्या आलोचना की है?”

नरेन बाबू ब्राह्मधर्मके एक आचार्य हैं। बहुत दिनों तक उपाचार्य रहकर उन्होंने ब्राह्म–समाजको माननेवालोंको शिक्षा भी दी है। बाबाजीके प्रश्नको सुनते ही नरेन बाबू अपने चश्माको नाकपर लगाकर कहने लगे—“भारत बहुत दिनोंसे कुछ दोषोंसे दूषित है। ये दोष इस प्रकार हैं—(१) जातिभेद—मानवमात्र ही एक पिताकी सन्तान हैं। सभी लोग भाई हैं। जातिभेदके कारण भारतवासियोंके उन्नत होनेकी बात तो दूर रहे, वे और भी अधिक पतित हो रहे हैं। विशेषकर पाश्चात्य देशोंके उन्नत समाजके लिए वे घृणाके पात्र हैं। (२) भारतवासीगण निराकार ब्रह्मकी उपासनाको छोड़कर अनेक कल्पित देव–देवियोंकी पूजा करनेके कारण परमेश्वरसे बहुत दूर हो गये हैं। (३) पौत्तलिक पूजा (मूर्त्ति–पूजा)। (४) निरर्थक उपवास आदि व्रत धारण करना, (५) धूर्त्त ब्राह्मण जातिको निरर्थक सम्मान देना। (६) अनेक कदाचारके कारण हमारे भारतीय बन्धुगणका नरकगामी होना, (७) और पुनर्जन्ममें विश्वास करनेके कारण क्षुद्र जन्तुओंको भी जीव कहना, (८) उन जीवोंके मांस–भक्षणसे विरत होना और फलस्वरूप उपयुक्त आहारके अभावमें शरीरका दुर्बल होना तथा राज–काजमें अक्षम होना, (९) पति विहीन अबलाओंको वैधव्य यन्त्रणा द्वारा हीन अनुभव कराना। इन समस्त कुरीतियोंसे भारत भूमिको उन्नत करनेके लिए देश–हितैषी राजा राममोहन रायने जिस पवित्र ब्राह्मधर्मका बीज बोया है, आजकल वही बीज वृक्ष होकर फल दे रहा है। मैं उसी निराकार प्रभुके

निकट प्रार्थना करता हूँ, जिससे कि समस्त भारतवासी इस मोहरूपी अन्धकारसे ऊपर उठकर उपनिषदोंमें प्रचारित ब्राह्मधर्म स्वीकार करें। बाबाजी महाशय! ऐसा दिन कब होगा जब आप और हम सभी एकत्रित होकर उन्हीं निराकार प्रभुसे प्रार्थना करेंगे।"

नरेन बाबू गद्गद भावसे बोलते-बोलते निस्तब्ध हुए और किसीने कुछ भी नहीं कहा।

थोड़ा स्थिर होकर बाबाजीने कहा—"हाँ, सन्देहकी अपेक्षा थोड़ा-बहुत ईश्वरके प्रति विश्वासका उदय होना ही अच्छा है। जब मैं वाल्मीकि मुनिके आश्रमको पारकर कानपुर आया। वहाँ एक भली-भाँति सजाये गये आलोकित स्थानमें एक अँग्रेजको इन सब विषयोंके सम्बन्धमें बोलते हुए सुना था। उसके बाद पुनः कभी ये सब नहीं सुना।"

बाबाजीके द्वारा पुनः तत्त्व विषयरूपी मुख्य बातकी जिज्ञासा किये जानेपर आनन्द बाबूके द्वारा उसके सम्बन्धमें ब्राह्मधर्मके विचारका प्रदर्शन

बाबाजीने और कहा—"अच्छा, मैं एक मूल बात पूछ रहा हूँ—(१) ईश्वरका स्वरूप क्या है? (२) जीवके साथ उनका क्या सम्बन्ध है? (३) किस प्रकार उन्हें सन्तुष्ट किया जा सकता है? (४) उनके सन्तुष्ट होनेपर जीवको क्या लाभ होता है? (५) उनकी उपासना क्यों करते हैं?"

आनन्द बाबू एक भद्रवंशमें उत्पन्न नवयुवक हैं। वे अपने यज्ञोपवीतका परित्यागकर ब्राह्मधर्मके प्रचारक बने हैं। बाबाजीके वैज्ञानिक प्रश्नोंको सुनते ही वे अत्यधिक उत्साहित होकर उठ खड़े हुए और बोले—"हे महात्मन्! श्रवण करे, ब्राह्मधर्मके भण्डारमें सभी प्रश्नोंका उत्तर है। ब्राह्मधर्मकी कोई पुस्तक नहीं है, ऐसा समझकर आप ये नहीं सोचें कि ब्राह्म धर्म क्षुद्र है। जिन धर्मोंमें किसी विशेष पुस्तकका सम्मान है, उन सभी धर्मोंमें अवश्य ही

कुछ–न–कुछ प्राचीन भ्रम या रूढ़िवाद दृष्टिगोचर होते हैं। आपलोगोंके वैष्णवधर्मकी ब्राह्मधर्मसे तुलना करना, एक सरोवरकी तुलना सागरसे करनेके समान प्रतीत होता है। छोटे सरोवरमें मुक्ता नहीं मिलता, बल्कि समुद्रमें ही मुक्ता पाया जाता है। यद्यपि हमलोगोंकी कोई बृहत् पुस्तक नहीं है, तथापि ब्राह्मधर्म नामक जो एक पुस्तिका है, उसमें आपके समस्त प्रश्नोंका उत्तर नख–दर्पण (नखरूपी छोटेसे दर्पणमें बहुत बड़े–बड़े प्राणियोंको स्पष्ट रूपसे देख पाने) के समान लिखा हुआ है।"

आनन्द बाबूने नाकपर चश्मा चढ़ाया और अपना बैग खोलकर एक पुस्तिका निकालकर पढ़ने लगे—"(१) ईश्वरका स्वरूप निराकार है, (२) जीवके साथ उनका पिता–पुत्रका सम्बन्ध है, (३) उनके प्रिय कार्यको पूर्ण करनेसे वे सन्तुष्ट होते हैं। (४) उनके सन्तुष्ट होनेसे हम भूमानन्द प्राप्त करते हैं। (५) उन्होंने हमारे लिए माताके स्तनमें दूध, खेतमें हरी–हरी फसल और जलाशयमें मछलीकी सृष्टि की है। अतएव हमलोग कृतज्ञतापूर्वक उनकी उपासना करनेके लिए बाध्य हैं। देखिये, कितने कम अक्षरोंमें हमारे धर्माचार्योंने वास्तविक बातोंको लिखा है। इन पाँच बातोंको लिखनेके लिए आपलोग एक महाभारत लिख देते। धन्य हैं राजा राममोहन राय! उनकी जय हो। ब्राह्मधर्मकी पताका पृथ्वीपर सर्वत्र उड्डीयमान हो।"

आनन्द बाबूके तीक्ष्ण नेत्र और मुखको देखते हुए बाबाजीने मुस्कराते हुए कहा—"आपलोगोंका मङ्गल हो, परात्पर प्रभु एकबार आपलोगोंको आकर्षित करें। आज आपलोग मेरे अतिथि हुए हैं। किसी प्रकारकी बातोंसे आपलोगोंको उद्वेग देना मेरा कर्त्तव्य नहीं है। श्रीगौराङ्गकी इच्छा होनेपर शीघ्र ही इन सभी विषयोंकी आलोचना करेंगे।"

बाबाजीकी विनयपूर्ण बात श्रवण करते ही नरेन बाबू और आनन्द बाबू नाकसे चश्मा उतारकर रखते हुए हँसकर बोले—"जैसी आज्ञा! क्रमशः आपके सिद्धान्तोंका श्रवण करेंगे।"

मल्लिक बाबूके प्रश्न करनेपर योगी बाबाजीके द्वारा राजयोगकी व्याख्या करते समय हठयोगके तारतम्यका वर्णन

सबके चुप हो जानेपर मल्लिक महाशय पुनः कहने लगे—"बाबाजी महाशय! कृपापूर्वक राजयोगकी व्याख्या करें।"

तथास्तु कहकर योगी बाबाजीने कहना आरम्भ किया—"दार्शनिक और पौराणिक पण्डितगण जिस योगका अभ्यास करते हैं, उसका नाम **राजयोग** है। तान्त्रिक पण्डितोंने जिस योगकी व्यवस्था की है, उसका नाम **हठयोग** है। हठयोगमें मेरी अधिक रुचि नहीं है, क्योंकि इसके द्वारा वैष्णवधर्मका पालन करनेमें बहुत विघ्न उपस्थित होते हैं। शाक्त और शैव तन्त्रसमूह तथा इन तन्त्रसमूहसे जो 'हठयोग-दीपिका' 'योग-चिन्तामणि' आदि ग्रन्थ निकले हैं, उनमें हठयोगका वर्णन है। इनमेंसे 'शिव-संहिता' और 'घेरण्ड-संहिता'—ये दोनों ग्रन्थ मेरे विचारसे सर्वोत्कृष्ट हैं। काशीधाममें रहते समय इन ग्रन्थोंको पढ़कर मैंने भी हठयोगियोंके समान थोड़ा अभ्यास किया था, किन्तु अन्तमें देखा कि इस योगमार्गसे केवल शारीरिक सामान्य फलका उदय होता है। इसमें समाधि सहज नहीं है।

हठयोगके तत्त्वका विश्लेषण

"संक्षेपतः हठयोगका तत्त्व इस प्रकार है—

(क) पुण्य और पाप कर्मोंके द्वारा जीवका घटरूपी शरीर उत्पन्न हुआ है। कर्मवशतः इस घटमें स्थित जीवका जन्म-मरण होता है।

(ख) यह घट आम-कुम्भस्वरूप है अर्थात् दग्धीभूत होकर पक्व नहीं होता। संसार-सागर सर्वदा विपदग्रस्त है। हठयोगके द्वारा यह घट दग्ध होकर शोधित होता है।

(ग) घट-शोधन सात प्रकारके हैं—

(१) शोधन—षट्कर्म द्वारा शोधन

(२) दृढ़ीकरण—आसन द्वारा दृढ़ीकरण

(३) स्थिरीकरण—मुद्रा द्वारा स्थिरीकरण

(४) धैर्य—प्रत्याहार द्वारा धैर्य

(५) लाघव—प्राणायाम द्वारा लाघव

(६) प्रत्यक्ष—ध्यान द्वारा प्रत्यक्ष और

(७) निर्लिप्तीकरण—समाधि द्वारा निर्लिप्तीकरण साधित होता है।

(ग) (१) षट्कर्मके द्वारा शोधन—

(अ) धौति, (आ) वस्ति, (इ) नेति, (ई) लौलिकी, (उ) त्राटक एवं (ऊ) कपालभाति—इन षट्कर्मोंके द्वारा 'घट' शोधित होता है।

(अ) **धौतिके** चार प्रकार—

(१) अन्तर्धौति—वातसार, वारिसार, वह्निसार एवं बहिष्कृति—ये चार प्रकारके अन्तर्धौति हैं।

(२) दन्तधौति—दन्तमूल, जिह्वामूल, दोनों कर्णरन्ध्र और कपालरन्ध्र—इन पाँच प्रकारके धौतिका नाम दन्तधौति है।

(३) हृद्धौति—दण्ड द्वारा, वमन द्वारा, वस्त्र द्वारा—ये तीन प्रकारकी हृद्धौति हैं।

(४) मलधौति—दण्ड, अँगुली और जल द्वारा मल शोधन करना।

(आ) **वस्तिके** दो प्रकार—

(१) जलवस्ति—नाभि तक जलमें बैठकर आकुञ्चन-प्रसारणद्वारा जलवस्ति होती है।

(२) शुष्कवस्ति।

(इ) **नेति**—एक वितस्ति (१२ अङ्गुल लम्बे) परिमाणका धागा नाकमें प्रवेश कराकर मुखसे बाहर करनेका नाम नेति है।

(ई) **लौलिकी**—अमन्द वेग अर्थात् तेजीसे मस्तकको दोनों ओर घुमानेका नाम लौलिकी है।

(उ) **त्राटक**—निमीलन और उन्मीलन त्यागकर अश्रुपात जैसे किसी सूक्ष्म लक्ष्यको देखनेका नाम त्राटक है।

(ऊ) **कपालभाति** अथवा भालभाति तीन प्रकारका है—(१) अव्युत्क्रम (२) व्युत्क्रम एवं (३) शीतक्रम।

(ग) (२) आसनके द्वारा दृढ़ीकारण

"बत्तीस प्रकारके आसनोंका वर्णन किया गया है। घट शोधित होनेपर उसके दृढ़ीकरणके लिए आसनकी व्यवस्था है। यही हठयोगकी द्वितीय प्रक्रिया है। सिद्धासन, पद्मासन, भद्रासन, मुक्तासन, वज्रासन, स्वस्तिकासन, सिंहासन, गोमुखासन, वीरासन, धनुरासन, मृतासन, गुप्तासन, मत्स्यासन, मत्स्यग्रासन, गोरक्षासन, पश्चिमोत्तासन, उत्कटासन, शकटासन, मयूरासन, कुक्कुटासन, कूर्मासन, उत्तान कूर्मासन, मण्डुकासन, उत्तान मण्डुकासन, वृक्षासन, गरुड़ासन, वृषासन, शलभासन, मकरासन, उष्ट्रासन, भुजङ्गासन एवं योगासन। किसी भी एक आसनका अभ्यास करनेसे कार्य सिद्ध होता है।

(ग) (३) मुद्राके द्वारा स्थिरीकरण—

"'आसन' के अभ्यास द्वारा घटके दृढ़ होनेपर मुद्रासाधन द्वारा वह 'स्थिरीकृत' होता है। अनेक मुद्राओंमें पच्चीस मुद्राओंका उपदेश सर्वदा सर्वत्र दिया गया है। ये हैं—महामुद्रा, नभोमुद्रा, उड्डीयान, जालन्दर, मूलबन्ध, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, विपरीतकरणी, योनिमुद्रा, वज्रनि, शक्तिचालनी, तड़ागी, माण्डुकी, शाम्भवी, अधोधारणा, उन्मनी, वैश्वानरी, वायवी, नभोधारणा, अश्विनी, पाशिनी, काकी, मातङ्गी और भुजङ्गिनी। एक-एक मुद्राका एक-एक विशेष फल है।

(ग) (४) प्रत्याहारके द्वारा धैर्य—

"मुद्राके द्वारा घटके स्थिरीकृत होनेपर प्रत्याहार द्वारा घटका 'धैर्य' साधित होता है। मनको क्रमशः विषयसे खींचकर स्वस्थ करनेका नाम ही प्रत्याहार है।

(ग)(५) प्राणायामके द्वारा लाघव, नाड़ी शुद्धि, कुम्भक आदि ध्यान, धारणा और समाधि—

“प्रत्याहारके द्वारा मनके नियमित होनेपर धैर्य साधित होता है। इसके बाद प्राणायामके द्वारा शरीरको ‘लाघव’ करना होता है। प्राणायाम करनेमें देश और कालका नियम है। आहारसम्बन्धी भी अनेक विधियाँ हैं। कार्य आरम्भ करनेके समय इन सबको जानेंगे। पहले नाड़ीशुद्धि आवश्यक है। नाड़ीशुद्धिके बाद कुम्भक करना होता है। नाड़ीशुद्धिमें करीब तीन महीने लगते हैं। कुम्भक आठ प्रकारका होता है—सहित, सूर्यभेदी, उद्वायी, शीतली, तस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और केवली। रेचक, पूरक और कुम्भक—इन तीनों अङ्गोंके नियमित रूपसे साधित होनेपर अन्तमें केवल कुम्भक किया जा सकता है।

“प्राणायाम द्वारा ‘लाघव’ होनेपर साधक पहले ध्यान, बादमें धारणा और अन्तमें समाधि कर सकते हैं। इन सबका विशेष विवरण कार्यकालमें दूँगा।

हठयोगके विषयका उपसंहार

“इस प्रकार हठयोगकी साधनासे मनुष्य अनेक प्रकारके आश्चर्यकारी कार्य कर सकता है। यह तो फल देखनेसे ही विश्वास किया जाता है। तान्त्रिकोंने योगके अङ्गोंके विषयमें विभिन्न मत व्यक्त किये हैं। यथा—‘निरुत्तर–तन्त्र’ के चतुर्थ पटलमें कहा गया है—

आसनं प्राणसंरोधः प्रत्याहारश्च धारणा।
ध्यानं समाधिरेतानि योगाङ्गानि वदन्ति षट्॥

“आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—योगके ये छः अङ्ग हैं। इस विषयमें दत्तात्रेय आदिका मत भिन्न होनेपर भी प्रायः सभीके मतसे हठयोग मूलतः एकसमान है। मैंने हठयोगका साधन करके सन्तोष प्राप्त नहीं किया, क्योंकि मुद्रा–साधनके फलस्वरूप एक प्रकारकी शक्तिका उदय होता है, जिससे साधक और अग्रसर नहीं हो पाता। विशेषतः धौति, नेति आदि षट्कर्म

इतने दुरुह हैं कि सद्‌गुरुके समीप नहीं रहनेपर अनेक बार तो प्राण जानेकी भी आशङ्का रहती है। जब मैं काशीसे बद्रीनाथ गया, तो किसी राजयोगीने मेरे ऊपर कृपाकर राजयोगकी शिक्षा दी थी। उस समयसे मैंने हठयोगका परित्याग कर दिया।"

इतना कहनेके बाद बाबाजीने कहा—"आज इतना ही रहे, और किसी दिन राजयोगके विषयमें उपदेश दूँगा। अन्तिम प्रहर समाप्त हो रहा है। मेरे मनमें एकबार पूज्यपाद पण्डित बाबाजीके आश्रममें जानेकी इच्छा हो रही है।"

योगी बाबाजीके वैष्णव धर्मके प्रति नरेन और आनन्द बाबूकी श्रद्धा

जब योगी बाबाजी हठयोगकी व्याख्या कर रहे थे, तब उनकी गम्भीरताको देखकर नरेन बाबू और आनन्द बाबू बहुत श्रद्धाके साथ मनोयोगपूर्वक उसे सुन रहे थे। सुनते-सुनते बाबाजीके प्रति उन्हें थोड़ा विश्वास हुआ और अपने क्षुद्र ज्ञानके छिछलेपनका थोड़ा अहसास भी हुआ। दोनोंने ही कहा—"आपके साथ तत्त्वकी आलोचना करनेसे हम बहुत आनन्दित हुए। अतएव हमलोगोंने कुछ दिन यहाँ रहनेका विचार किया है। आपकी कथाके प्रति हमारी विशेष श्रद्धा हुई है।"

बाबाजीने कहा—"भगवान् यदि कृपा करें, तो अतिशीघ्र आपलोग भी शुद्ध कृष्णभक्त होंगे, इसमें सन्देह ही क्या है?"

नरेन बाबू बोले—"पौत्तलिक मत (मूर्त्तिपूजा आदि) स्वीकार करना हमलोगोंके लिए असम्भव है। किन्तु अभी ऐसा प्रतीत होता है कि वैष्णवलोग नितान्त सारहीन नहीं है, बल्कि ब्राह्मलोगोंकी अपेक्षा अधिक तत्त्वज्ञान विशिष्ट हैं। किन्तु दुःखका विषय यह है कि तत्त्वज्ञान रहनेपर भी वे लोग मूर्त्तिपूजाका परित्याग क्यों नहीं करते? मैं यह नहीं समझ पाता हूँ। यदि वैष्णवधर्ममें मूर्त्तिपूजा बन्द हो जाये, तो यह ब्राह्मधर्मके साथ एक हो जायेगा। हमलोग भी अनायास ही आपलोगोंको वैष्णव कहनेमें कुण्ठित या संकुचित नहीं होंगे।"

बाबाजी अत्यन्त गम्भीर हैं। वे भलीभाँति जानते है कि छोटी आयुके लोगोंको किस प्रकार भक्तिपथ दिखाया जाता है। अतएव उस समय उन्होंने कहा—"आज ये सब बातें यहीं रहें।"

मल्लिक महाशय बाबाजीके ज्ञान और प्रेमसे मुग्ध होकर निस्तब्ध थे। विशेषतः मन–ही–मन हठयोगके वृत्तान्तको स्मरणकर यह चिन्ता कर रहे थे—"अहो! मैं कैसा मूर्ख हूँ। सामान्य 'मेस्मेरिज्म' (वशीकरण), थोड़ा हठयोगका वृत्तान्त और 'भूत–विद्या' के लिए मैडम लॉरेन्सके निकट मद्रास गया था। ऐसे महानुभव योगीवरका आज तक दर्शन नहीं किया। नित्यानन्द दासकी कृपासे ही मेरा शुभदिन आया है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।"

नरेन बाबू और आनन्द बाबू कई दिनों तक बाबाजीके साथ रहकर अनेक तत्त्वोंकी आलोचना करते रहे, इससे वैष्णवधर्मके प्रति उनकी बहुत श्रद्धा हुई तथा शुद्धभक्तिके तत्त्वको बहुत कुछ समझ सके। वैष्णवधर्ममें इतनी श्रेष्ठ बातें हैं, यह वे पहले नहीं जानते थे। 'थियोडोर पार्कर' ने जिस शुद्धभक्तिका उल्लेख किया है, उसे नरेन बाबूकी तीक्ष्ण बुद्धिने वैष्णवधर्ममें पाया। आनन्द बाबूने भी शुद्धभक्तिके विषयमें अनेक अँग्रेजी ग्रन्थ पढ़े थे, किन्तु पुरातन वैष्णवधर्ममें उन बातोंकी अत्यधिक आलोचना देखकर वे आश्चर्यान्वित हुए। किन्तु, दोनों ही इस विषयमें वितर्क करने लगे कि जो इतनी गहराई तक शुद्धभक्तिकी आलोचना कर सकते हैं, वे किस प्रकार राम, कृष्ण आदि मानवोंकी पूजा और मूर्त्तिपूजाका प्रचार करते हैं।

एक दिन योगी बाबाजीने कहा—"चलें, आज हमलोग पण्डित बाबाजीका दर्शन करें। दिन ढलते ही सभी पण्डित बाबाजीकी गुफाकी ओर चल पड़े।"

तृतीय प्रभा समाप्त

चतुर्थ प्रभा

योगी बाबाजीके साथ मल्लिक महाशय तथा नरेन और आनन्द बाबूका गोवर्द्धनमें पण्डित बाबाजीकी गुफाकी ओर गमन; मार्गमें सङ्गीत श्रवण

दिन प्रायः ढल चुका है। सूर्यकी प्रचण्ड किरणें कुछ शान्त हो गयी हैं। मन्द-मन्द पछुआ (पश्चिमकी) हवा बह रही है। अनेक लोग तीर्थमें घूमनेके लिए बाहर निकल आये हैं। गिरिराज गोवर्द्धनकी परिक्रमा करनेके उद्देश्यसे आयी हुई बहुत-सी स्त्रियाँ एकसाथ मिलकर उच्च स्वरसे यह गीत गाते हुए चल रही थी—

त्यज रे मन हरि-विमुख लोक-सङ्ग।
जाक सङ्ग हि, कुमति उपजतहि,
भजन हि पड़त विभङ्ग॥

सतत असत् पथ, लेई जो जायत,
उपजात कामिनी-सङ्ग।
शमन दूत, परमायु परखत,
दूर नेहारत रङ्ग॥

अतएव हरिनाम सार परम मधु।
पान करह छोड़ि ढङ्ग कह माध-हरि-चरण-
सेवोरूहे माति रहु जनु-भृङ्ग॥

[हे मन! तुम ऐसे हरिविमुख लोगोंका सङ्ग अवश्य ही त्याग कर दो, जिनके सङ्गसे दुर्बुद्धि उत्पन्न होती है तथा भजनमें बाधा पड़ती है। जिनका सङ्ग निरन्तर असत् पथ और कामिनीके सङ्गमें ही ले जाता है तथा (जिनके सङ्गमें रहकर इस प्रकारके व्यर्थके कार्योंमें व्यस्त) व्यक्तियोंकी परमायुको घटते देखकर दूरसे ही यमराजके दूतोंके हृदयमें अत्यधिक आनन्द उत्पन्न होता है।

(यदि ऐसा सुनकर मन पूछे कि तो फिर क्या करूँ? तो उसका उत्तर देते हुए) मैं 'माधव' कह रहा हूँ कि अतएव कपटताका सम्पूर्ण रूपसे परित्याग करके अपनी मतिको श्रीहरिके चरणरूपी कमलमें स्थित उस हरिनाम साररूपी सर्वोत्तम अमृतके पानमें उसी प्रकार लगा दो, जिस प्रकार भ्रमर सुध–बुध खोकर अपनी मतिको सरोवरमें उत्पन्न नवजात कमलके प्रति लगा देता है।]

गीतको सुनते–सुनते मल्लिक महाशयने नरेन बाबू और आनन्द बाबूके प्रति कटाक्षपात किया, जिससे दोनोंके मनमें थोड़ा विकार उत्पन्न हुआ। नरेन बाबू रहस्यपूर्वक बोले—"नहीं, आजके बाद हम वैष्णवधर्मकी और निन्दा नहीं करेंगे। मैं तो देखता हूँ कि ब्राह्मधर्म और वैष्णवधर्ममें तनिक भी भेद नहीं है, केवल मूर्त्तिपूजाका तात्पर्य नहीं समझ पाता हूँ।" इसे सुनकर किसीने कुछ उत्तर नहीं दिया। सभी धीरे–धीरे अग्रसर होने लगे। योगी बाबाजीने कहा—"हमलोग भी एक गीत गाते हुए चलें।" बाबाजीने सुर पकड़कर गान आरम्भ किया और सभी साथ–साथ गाने लगे—

हरि हरि! कबे हब वृन्दावनवासी।
निरखिब नयने युगल–रूपराशि॥

त्यजिया शयन–सुख विचित्र पालङ्क।
कबे व्रजेर धूलाते धूसर हबे अङ्ग॥

षड्–रस–भोजन दूरे परिहरि'।
कबे यमुनार जल खाब कर पुट भरी'॥

नरोत्तम दासे कहे करि परिहार।
कबे वा एमन दशा हइबे आमार॥

[हे हरि! मैं कब वृन्दावनवासी होकर अपनी आँखोंसे श्रीराधाकृष्ण–युगलके अपूर्व रूप–सौन्दर्यका दर्शन करूँगा? विचित्र पलङ्कपर शयनसुखका परित्यागकर कब व्रजकी धूलिमें लोटनेसे मेरा शरीर धूलसे भर जायेगा तथा कब छः प्रकारके स्वादपूर्ण भोजनका

परित्यागकर व्रजमें माधुकरी माँगकर खाऊँगा? परिक्रमा करते-करते थक जानेपर एक वनसे दूसरे वनमें भ्रमण करते हुए यमुनाके किनारे जाकर विश्राम करूँगा? कब वंशीवटकी सुशीतल छायामें बैठकर ताप दूर करूँगा तथा कब कुञ्जोंमें वैष्णवोंके निकट बैठूँगा। श्रीनरोत्तमदास ठाकुर कह रहे हैं—अहो! मेरी ऐसी दशा कब होगी?]

यह प्रार्थना मूलक गीत गाते-गाते प्रायः सबकी नृत्य करनेकी इच्छा हुई। नरेन बाबू और आनन्द बाबूने कलकत्तामें ब्राह्म लोगोंके नगरकीर्त्तनमें अनेक बार नृत्य किया था, अतएव योगी बाबाजीके साथ ब्राह्मरसमें नृत्य करनेमें उन्होंने कोई आपत्ति नहीं देखी। केवल जब बाबाजी 'युगल-रूपराशि' बोलते, तब वे 'अपरूप-रूपराशि' शब्द गाने लगे। इससे एक अपूर्व शोभा हुई। एक यथार्थ बाबाजी, दूसरा एक व्यक्ति संसारी वैष्णव जिसकी शिखा नहीं है, और दो लोगोंके पैरोंमें जूते, नाकपर चश्मा। जब ये लोग अग्रसर हो रहे थे, तब अनेक व्यक्ति सतृष्ण नयनोंसे इनलोगोंको देख रहे थे। वे सोच रहे थे—"क्या बाबाजी जगाई-माधाई का उद्धार कर रहे हैं।"

पण्डित बाबाजीके आश्रममें दो वैष्णव और दो बाबू

कीर्त्तनके आनन्दसागरमें गोते लगाते हुए वे लोग पण्डित बाबाजीके आश्रममें उपस्थित हुए। कीर्त्तनकी ध्वनि सुनकर पण्डित बाबाजी समस्त बाबाजी-मण्डलीके साथ अग्रसर होकर कीर्त्तनके सम्मुख दण्डवत्-प्रणाम करते हुए कीर्त्तनमें मत्त हो गये। जब कीर्त्तन समाप्त हुआ तो दो दण्ड रात बीत चुकी थी।

जब सब लोग बैठ गये, तब मल्लिक महाशय बाबाजी लोगोंके चरणरेणुको अपने समस्त अङ्गोंमें लगाते हुए अपने दोनों हाथोंको अन्य दो साथियोंके देहमें मलते हुए कहने लगे—"समस्त संशय दूर हो।" उनलोगोंने उत्तर दिया—"यद्यपि कोई भी किसीकी चरण-रेणुको ले सकता है, तथापि [इन वैष्णवोंकी चरणरजको प्राप्त करके]

आज हमलोगोंके हृदयमें एक नवीन भावका उदय हुआ, मानो हमलोग प्रातःस्नानके द्वारा पवित्र हुए हैं। किन्तु, भय होता है कि इस प्रकार विश्वास करते–करते बादमें कहीं पौत्तलिक (मूर्त्तिपूजक) न हो जायें। तथापि, सत्य बोलनेमें क्या है, अनेक ब्राह्म–कीर्त्तन किया और देखा, किन्तु वैष्णव–कीर्त्तनमें जैसा प्रेम है, वैसा प्रेम और कहीं नहीं देखा। देखें, निराकार हरि अन्तमें हमलोगोंका क्या करते हैं?"

उनलोगोंकी ऐसी बातोंको सुनकर प्रेमदास बाबाजी और हरिदास बाबाजी कुछ आश्चर्यान्वित होकर पूछने लगे—"ये लोग कहाँसे आये हैं?" योगी बाबाजीने उनलोगोंके विषयमें समस्त बातें बतायी, जिसे सुननेके बाद प्रेमदास बाबाजीने कहा—"श्रीगौरचन्द्रने आपके द्वारा इन दो महात्माओंको आकर्षित किया है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।"

पण्डित बाबाजीके निकट योगी बाबाजीका योगाभ्यासके बिना 'रस–समाधि' और 'राग–साधन' किस प्रकार सम्भव है, इस विषयमें प्रश्न

सबलोग मण्डपमें सुखपूर्वक बैठे हुए थे। एक कोनेमें एक प्रदीप टिम–टिम करता हुआ जल रहा था। अनेक लोग पवित्र झोलीके अन्दर तुलसी–मालापर हरिनाम–संख्या कर रहे थे। योगी बाबाजीने पण्डित बाबाजीसे कहा—"बाबाजी! आपके उपदेशने मेरे हृदयके अन्धकारको प्रायः दूर कर दिया है, किन्तु एक संशय यह है कि यदि हमलोग योगके अङ्ग प्राणायाम, ध्यान और धारणाको स्वीकार न करें तथा उनका अभ्यास न करें, तो हमलोग किस प्रकार 'रस–समाधि' प्राप्त कर पायेंगे? 'सिद्ध–विषय' को भी हृदयमें जागरित करनेके लिए साधनका प्रयोजन होता है। 'राग' उत्पन्न करनेका साधन क्या है?"

प्रश्नको सुनकर सभी सतृष्ण नेत्रोंसे पण्डित बाबाजीके गम्भीर श्रीमुखकी ओर देखने लगे। मल्लिक महाशय थोड़ा आश्चर्यचकित

हुए। ऐसा लगता है कि उन्होंने योगी बाबाजीको ही सर्वश्रेष्ठ वैष्णव मान लिया था। उनके प्रश्नसे वे समझ गये कि योगी बाबाजी पण्डित बाबाजीके प्रति गुरुकी भाँति श्रद्धा रखते हैं। उस समय पण्डित बाबाजीके प्रति मल्लिक महाशय भी श्रद्धान्वित हुए।

पण्डित बाबाजीका उत्तर—(क) विषय–राग और वैकुण्ठ–रागका पार्थक्य एवं वैकुण्ठ–साधनके बिना वैराग्य अथवा योगके द्वारा वैकुण्ठीय रागकी प्राप्ति असम्भव

पण्डित बाबाजी कहने लगे—"बद्ध जीवात्माके लिए उसका स्वधर्मरूप विशुद्ध वैकुण्ठ–राग कुछ दुःसाध्य अर्थात् कष्टसाध्य है। विशुद्ध वैकुण्ठ–राग ही विकृत होकर जड़ीय विषयरागके रूपमें परिणत हुआ है। विषय–राग जितना ही वर्द्धित होता है, वैकुण्ठ–राग उतना ही कम होता जाता है तथा वैकुण्ठ–राग जितना अधिक वर्द्धित होता है, विषय–राग उतना ही कम होता जाता है। यही वैकुण्ठ–राग ही जीवका नैसर्गिक (स्वाभाविक) धर्म है, विषय–रागके दमनसे ही वैकुण्ठ–राग होता हो, ऐसी बात नहीं है। अनेक लोग केवल वैराग्यका आश्रयकर विषय–रागके दमनकी चेष्टा करते हैं, किन्तु वैकुण्ठ–रागके सम्वर्द्धनकी चेष्टा नहीं करते हैं। इससे अन्तमें अमङ्गल ही होता है।

"ध्यान, प्रत्याहार, धारणा आदि चिन्ता और कार्यसमूह यद्यपि रागोदयके फलके उद्देश्यसे उपदिष्ट हुए हैं तथा यह बहुत लोगोंके द्वारा साधित भी होते हैं, किन्तु इनमें यथेष्ट रागकी आलोचना नहीं है। इसलिए योगीगण प्रायः ही विभूतिप्रिय हो जाते हैं तथा अन्तमें 'राग' को प्राप्त नहीं कर पाते हैं। पक्षान्तरमें वैष्णव–साधन ही श्रेष्ठ है।

"देखिये, साधनमात्र ही कर्मविशेष है। मनुष्य जीवनमें जो समस्त कर्म आवश्यक हैं, यदि कोई केवल उन्हीं कार्योंको करनेमें ही आसक्त रहे अथवा जिसकी परमार्थके लिए की गयी सभी क्रियाएँ

शुष्क चिन्ता और व्यर्थके परिश्रमवाली हो, क्या वे वैकुण्ठ–रागको उदय करानेमें शीघ्र समर्थ हो सकते हैं? वैकुण्ठरागके चेष्टासमूहको जीवनसे पृथक् करनेपर साधकको एक ओर विषय–राग खींचेगा एवं दूसरी ओर वैकुण्ठ चिन्ता। इस स्थितिमें जिस ओर रागकी अधिकता होगी, उसी ओर जीवकी गति होगी। चप्पूके जोरसे नौका चलती है, किन्तु जहाँ जलका रागरूपी स्रोत उसे आकर्षित करता है, वहाँ स्रोतके प्रवाहके सम्मुख चप्पूका जोर पराभूत हो जाता है। इसी प्रकार साधक समय–समय ध्यान, प्रत्याहार और धारणारूपी अनेक चप्पूओंके द्वारा मनरूपी नौकाको नदीके तटपर लानेकी चेष्टा तो करता है, किन्तु विषय–रागरूपी स्रोत बिना किसी विलम्बके ही उसे विषयमें धकेल देता है।"

योग–साधन और ब्रह्मज्ञान–साधनकी अपेक्षा वैष्णव–साधनमें रागमार्गके श्रेष्ठत्वका विश्लेषण

"वैष्णव–साधन रागमार्गके द्वारा साधित होता है। रागकी सहायतासे साधक निश्चय ही अविलम्ब वैकुण्ठ–राग प्राप्त करता है। रागका स्रोत किसे कहते हैं, यह जानना चाहिये। बद्धजीवका चित्त स्वाभाविक रूपसे जिससे प्रेम करता है और शरीर–पोषणके लिए जो–जो प्रियके रूपमें स्वीकृत है—वह सबकुछ ही मानव जीवनका विषय–राग है। इनमें विचारकर देखा जाता है कि पाँच इन्द्रियोंके सम्बन्धमें पाँच राग हैं। चित्त इन्द्रियोंके द्वारा विषय–रागके प्रति धावित होता है। जैसे—जिह्वाके द्वारा आहार, नासिका द्वारा घ्राण, कान द्वारा श्रवण, त्वचा द्वारा स्पर्श और चक्षुके द्वारा दर्शन। बद्धजीवका चित्त सब समय किसी–न–किसी विषयमें संलग्न रहता है। किसकी शक्तिसे चित्तको विषयसे हटाया जा सकता है? यद्यपि शुष्क ब्रह्मचिन्ता द्वारा इस विषयमें कुछ सहायता हो सकती है, तथापि ब्रह्मके निष्क्रिय होनेसे साधकको इसके द्वारा भलीभाँति बल नहीं प्राप्त होता है। अतएव योगियों और ब्रह्मज्ञानियोंको अत्यधिक क्लेश होता है। भक्तिमार्गमें क्लेश नहीं है। कृष्णभक्तका जीवन

ब्रह्मसे पृथक् नहीं है। विषय-राग और वैकुण्ठ-राग—इस साधनमें पृथक् नहीं हैं। मन चक्षुके द्वारा विषय-दर्शन करना चाहता है, तो उत्तम श्रीमूर्त्तिका अनिर्वचनीय सौन्दर्य दर्शन करे। वहाँ विषयभोग और ब्रह्मसम्भोग एक ही कार्य है। श्रवण करना चाहता है? तो कृष्ण-गुणगान और कृष्णकथा श्रवण करे। उपादेय द्रव्य आहार करना चाहता है?—तो सब प्रकारसे सुस्वादु द्रव्य श्रीकृष्णको अर्पणकर प्रसाद पावे। घ्राणके लिए—(भगवान्के चरणोंमें) अर्पित तुलसी-चन्दन आदि हैं। इस प्रकार समस्त विषय ही कृष्णसाधकके लिए ब्रह्ममिश्रित हैं। कृष्णसाधक सर्वत्र ब्रह्ममय है। उसके समस्त कार्य ही वैकुण्ठ-रागके अनुशीलन हैं। उनके लिए इन्द्रियपरता बाधक नहीं, बल्कि प्रेमफल-साधक है। इस प्रकार संक्षेपमें मैंने रागमार्ग तथा अन्य साधनमार्गका सम्बन्ध दिखाया है। आप महानुभव वैष्णव हैं। मैं और कुछ नहीं कहूँगा। यदि कुछ भूल हुई हो, तो क्षमा करेंगे।"

पण्डित बाबाजीकी आलोचनासे एक ओर तो सभी मुग्ध, दूसरी ओर नरेन और आनन्द बाबू राजा राममाहेन रायके प्रति सन्दिग्ध

पण्डित बाबाजीकी कथाको सुनकर सभी चमत्कृत हुए। भिन्न-भिन्न लोगोंके मनमें भिन्न-भिन्न भावोंका उदय हुआ। योगी बाबाजी यद्यपि योग विषयमें पारङ्गत थे, तथापि वैष्णव-रसमें भी उनका भलीभाँति अधिकार था। इसलिए वे निःसंशय होकर पण्डित बााबाजीकी चरणरेणुका आस्वादन करने लगे। पण्डित बाबाजीने उन्हें प्रेमालिङ्गन प्रदान किया। उस समय मल्लिक महाशयको क्या बोध हुआ, यह कोई नहीं समझ पाया।

नरेन बाबू और आनन्द बाबू कई दिनोंसे श्रीमूर्त्तिकी पूजाके मूलतत्त्वके विषयमें विचार कर रहे थे। योगी बाबाजीने उन्हें 'श्रीचैतन्य-गीता'[१] ग्रन्थ पढ़नेको दिया। जिसे पढ़कर तथा अनेकानेक

[१] स्वकृत जीवनीमें श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरने स्वरचित ग्रन्थोंका उल्लेख करते हुए 'श्रीचैतन्य-गीता' का भी उल्लेख किया है।

विचारकर विग्रहपूजाके अनेक तात्पर्योंको वे समझ गये, फिर भी मूर्त्तिपूजाके प्रति श्रद्धा नहीं हुई। पण्डित बाबाजीके गम्भीर प्रेमगर्भ उपदेशोंको श्रवणकर परस्पर कहने लगे—"हाय! हमलोग केवल विदेशी विद्याके प्रति मुग्ध हैं! अपने देशमें कैसे-कैसे अमूल्य रत्न हैं, यह नहीं जानते हैं!"

नरेन बाबूने कहा—"आनन्द बाबू! तब राममोहन रायने क्या सोचकर श्रीविग्रहतत्त्वकी अवहेलना की है? मालूम होता है, इस विषयमें उन्हें कुछ भ्रम हुआ था। राजा राममोहन रायको भ्रम! ऐसा कहनेमें भी डर लगता है! जिन राममोहन रायकी कथासे हम आज तक व्यास-नारद आदिको भी भ्रमात्मक मानते आये हैं, आज किस मुखसे उन्हें भ्रान्त कहूँ?"

आनन्द बाबूने कहा—"भय क्यों? सत्यके लिए हमलोग राममोहन रायका भी त्याग कर सकते हैं।"

चातुरी पूर्ण कीर्त्तन करते हुए तीनों साथियोंको लेकर योगी बाबाजीका कुञ्जमें प्रत्यावर्त्तन

बहुत रात हो गयी थी। योगी बाबाजी अपने तीनों साथियोंको लेकर अपने आश्रमपर लौट आये और रास्तेमें यह गान गाते-गाते चारों कुञ्जमें पहुँचे—

केन आर कर द्वेष, विदेशी-जन-भजने।
भजनेर लिङ्ग नाना, नाना देशे नाना जने॥१॥

केह मुक्तकच्छे भजे, केह हाँटू गाड़ि पूजे।
केह वा नयन मूंदि, थाके ब्रह्म-आराधने॥२॥

केह योगासने पूजे, केह सङ्कीर्त्तने मजे।
सकले भजिछे सेई, एकमात्र कृष्णधने॥३॥

अतएव भ्रातृभावे थाक सबे सुसद्भावे।
हरिभक्ति साध सदा, ए-जीवने वा मरणे॥४॥

गानके समय आनन्द बाबू और नरेन बाबू 'कृष्णधने' बोलनेमें लज्जा बोधकर 'भगवाने' शब्द व्यवहारकर सुर दे रहे थे। योगी बाबाजीने इस बातको उसी समय लक्ष्य किया, किन्तु उस रात कुछ नहीं कहा।

सभी भक्तिभावसे थोड़ा-थोड़ा प्रसाद पाकर सो गये।

चतुर्थ प्रभा समाप्त

पञ्चम प्रभा

आधुनिक पाश्चात्य सम्प्रदायके लोगोंकी धारणा—वैष्णव लम्पट तथा लाम्पट्य ही भक्तिधर्म

नरेन बाबू और आनन्द बाबू एक ही कुटियामें सोये, किन्तु विभिन्न चिन्ताओंके कारण उन्हें बहुत देर तक नींद नहीं आयी। नरेन बाबूने कहा—"आनन्द बाबू! आप कैसा अनुभव कर रहे हैं? हमलोग चिरकालसे यही जानते थे कि वैष्णवधर्म नितान्त हेय है। अनेक लम्पट लोग, लम्पट-चूड़ामणि श्रीकृष्णको देवता मानते हैं। उस दिन भी रेवरेण्ड चार्ट साहबने इस विषयमें एक सुदीर्घ हृदयग्राही वक्तृता दी थी। हमलोगोंके प्रधान आचार्य महोदयने भी बहुत बार हमलोगोंको कृष्णके विषयमें विशेष सतर्क किया है। उन्होंने एक दिन यह भी कहा था कि वैष्णवलोग भक्ति-भक्ति तो चिल्लाते हैं, किन्तु स्त्री-पुरुषके लाम्पट्यको ही वे भक्ति कहते हैं। 'भक्ति' नामक जो एक विशेष वृत्ति है, वे उसका कुछ भी अनुसन्धान नहीं करते हैं। किन्तु, हम वैष्णवोंकी जिन भाव-भङ्गिमाओंको देख रहे हैं एवं हमने जो तत्त्वगर्भ उपदेश श्रवण किये हैं, उससे उनलोगों (अर्थात् वैष्णवों) के प्रति मेरी उतनी अश्रद्धा नहीं है, इस विषयमें आप क्या कहते हैं?"

आनन्द बाबूने कहा—"न जाने किस कारणसे वैष्णवोंके प्रति मुझमें भी विशेष श्रद्धा हुई है? पण्डित बाबाजी कैसे पवित्र पुरुष हैं। उनको देखनेसे ईश्वरकी भक्ति उदित होती है। उनकी वाणी अमृतस्वरूप है। उनकी नम्रता सर्वदा अनुकरणीय है। उनके पाण्डित्यकी सीमा नहीं है। देखिये, योगी बाबाजी योगशास्त्रमें कितने पारदर्शी और पण्डित हैं, तथापि उन्होंने पण्डित बाबाजीके निकट कितनी शिक्षाएँ ग्रहण की है।"

श्रीविग्रह पूजाकी पौत्तलिकताके विषयमें नरेन बाबूका सन्देह तथा उसके विषयमें जल्पना-कल्पना

नरेन बाबूने कहा—"पण्डित बाबाजीकी वक्तृतासे मैंने एक अपूर्व बात संग्रह की है। वैष्णवलोग जो श्रीविग्रहकी पूजा करते हैं, वह ईश्वरसे भिन्न कोई पुत्तलिका (बुत) नहीं है, बल्कि ईश्वर-भक्तिके उद्दीपकका उदाहरणमात्र है। किन्तु, मेरा संशय यह है कि ईश्वर-भावको उस प्रकार निदर्शन द्वारा लक्ष्य करना उचित है या नहीं? ईश्वर—सर्वव्यापी भूमा पुरुष हैं। उन्हें देश-कालके भावमें वशीभूतकर उनका आकार स्थापित करनेसे उनके गौरवको तुच्छ करना होता है या नहीं? और भी, 'एक'—वस्तुमें 'अन्य'—वस्तुकी कल्पना करना क्या बुद्धिमानोंका कार्य है?"

श्रीविग्रह पूजाके सम्बन्धमें आनन्द बाबूकी नरेन बाबूसे अधिक स्पष्ट धारणा

आनन्द बाबूने इस विषयमें थोड़ा अधिक समझा था। वे बोले—"नरेन बाबू! मैं और इस प्रकारका सन्देह नहीं करना चाहता हूँ। परमेश्वर अद्वितीय पुरुष हैं, उनके समान या उनसे बढ़कर कोई नहीं है। सभी उनके अधीन हैं। ऐसा कुछ भी नहीं है, जो उनकी हानि कर सके। उनके प्रति भक्ति अर्जन करनेके लिए जो कुछ कार्य किया जाये, वे हृदयकी निष्ठा लक्ष्यकर उसका फल दान करते हैं। विशेषतः समस्त निराकार तत्त्वोंका ही निदर्शन लक्षित वस्तुसे भिन्न होता है, तथापि इसके द्वारा उस वस्तुका भाव उपस्थित होता है। जब घड़ीके द्वारा निराकार काल, प्रबन्ध द्वारा अतिसूक्ष्म ज्ञान एवं प्रतिकृति (अर्थात् कर्मानुसार प्राप्त भिन्न-भिन्न प्रकारकी देहको लक्ष्य करनेके) द्वारा दया, धर्म आदि निराकार विषयका ज्ञान होता है, तब भक्तिसाधनमें आलोच्य लिङ्गरूप श्रीविग्रहके द्वारा भी उपकार होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। श्रीमूर्त्तिको पौत्तलिक व्यवस्था कहकर घृणा करना उचित नहीं लगता, बल्कि विषय-विवेचनाके लिए निदर्शनका विशेष आदर किया जा सकता

है। यदि घड़ी और पुस्तकको यत्नपूर्वक रखा जाता है, तो ईश्वर भावोद्दीपक श्रीविग्रहकी पूजा करनेमें क्या दोष हैं? ईश्वर जानते हैं कि तुम उन्हें ही उद्देश्य कर रहे हो। इससे वे अवश्य ही प्रसन्न होंगे।"

पौतलिकताके सम्बन्धमें आलोचना करनेका आश्वासन देकर बाबाजीके द्वारा सभीको सोनेका आदेश

नरेन बाबू और आनन्द बाबूने यह समझा था कि बाबाजी एवं मल्लिक महाशय सो रहे हैं। इसलिए वे लोग स्पष्ट रूपमें इन सब विषयोंकी आलोचना कर रहे थे। परन्तु योगी बाबाजी सर्वदा निद्राहीन थे, अतएव इन समस्त कथाओंको सुनकर कुछ भङ्गी करते हुए बोले—"रात अधिक हो गयी है, अब सो जाओ। कल इन विषयोंकी आलोचना करूँगा।"

नरेन बाबू और आनन्द बाबू अब तक बहुत श्रद्धालु हो गये हैं। बाबाजीका अनुग्रह देखकर आदरपूर्वक बोले—"बाबाजी! श्रीयुत मल्लिक महाशयकी भाँति हमलोगोंने भी आपके श्रीचरणोंका आश्रय ग्रहण किया है। इसलिए हमलोग आपकी कृपाकी प्रार्थना करते हैं।"

बाबाजी कहने लगे—"कल यथासाध्य यत्न करूँगा।"

कुछ ही देरमें सभी सो गये। उनलोगोंको निद्रित देखकर बाबाजीने किन-किन योगाङ्गोंका साधन किया, यह वे लोग नहीं देख पाये।

योगी बाबाजीके द्वारा राजयोगकी व्याख्या करते समय राजयोगके आठ प्रकारके अङ्गोंका वर्णन

प्रातःकाल उठकर सभी लोग प्रातःक्रियासे निवृत्त होकर पञ्चवटीके नीचे बैठे।

मल्लिक महाशयके द्वारा राजयोगके विषयमें जिज्ञासा करनेपर योगी बाबाजी कहने लगे—"समाधि ही राजयोगका मूल अङ्ग है। समाधि प्राप्त करनेके लिए पहले यम, बादमें नियम, उसके बाद

आसन, तत्पश्चात् प्राणायाम और प्रत्याहार, फिर ध्यान और धारणा—इन अङ्गोंका साधन करना पड़ता है। यदि साधक सत्–चरित्र, धार्मिक और शुचिमान हो, तो प्रारम्भमें ही आसनका अभ्यास करेंगे। यदि उसके चरित्रमें दोष रहे अथवा म्लेच्छ आदिके अपवित्र व्यवहारोंको उसके स्वभावमें देखा जाय, तो यम और नियमका नितान्त प्रयोजन हो जाता है। पातञ्जल दर्शन ही योगशास्त्र है। मैं पतञ्जलिका अवलम्बनकर राजयोगकी व्याख्या करूँगा। पतञ्जलिने कहा है—

यम–नियमासन–प्राणायाम–प्रत्याहार–
धारणा–ध्यान–समाधयोऽष्टावङ्गानि ॥१॥
(पा॰ द॰ २/२९)

(१) यम, (२) नियम, (३) आसन, (४) प्राणायाम, (५) प्रत्याहार, (६) धारणा, (७) ध्यान और (८) समाधि—ये आठ राजयोगके अङ्ग हैं।

(१) यम—अहिंसा–सत्य आदि पाँच प्रकार

अहिंसा–सत्यास्तेय–ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः॥२॥
(पा॰ द॰ २/३०)

(क) अहिंसा, (ख) सत्य, (ग) अस्तेय (घ) ब्रह्मचर्य, (ङ) अपरिग्रह—ये पाँच यम हैं। जो हिंसा करते हैं, वे हिंसा परित्याग करनेका यत्न करेंगे।

(क) अन्य जीवोंकी हत्या करनेकी इच्छाको हिंसा कहते हैं। यवनलोग तथा तामसिक और राजसिक आर्यलोग भी योगशिक्षा करनेसे पहले अहिंसाका अभ्यास करेंगे।

(ख) जो मिथ्यावादी हैं, वे सत्य बोलनेका अभ्यास करेंगे।

(ग) जो दूसरेका धन हरण करते हैं, वे अस्तेय (चोरी नहीं करने) का अभ्यास करेंगे।

(घ) जो मैथुन–प्रिय हैं, उन्हें उसे छोड़नेका प्रयास करना चाहिये।

(ङ) जो दूसरेके धनकी आशा करते हैं, वे उस आशाका दमन करेंगे।

(२) नियम—शौच–सन्तोष आदि पाँच प्रकार

शौच–सन्तोष–तपः स्वाध्यायेश्वर–प्रणिधानानि नियमाः॥३॥

(पा॰ द॰ २/३२)

शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरमें मनोनिवेश—ये पाँच नियम हैं। शरीरको साफ–सुथरा रखेंगे। सन्तुष्ट रहनेका अभ्यास करेंगे। सभी प्रकारके कष्टोंको सहनेका अभ्यास करेंगे। यदि बहुत पाप किये हों, तो उसके लिए अनुतापकी शिक्षा करेंगे। वेद आदि शास्त्रोंका अध्ययनकर ज्ञान–अर्जन करेंगे। ईश्वरमें मनोनिवेश करनेकी शिक्षा करेंगे।

(३) आसन—बत्तीस प्रकारके आसनोंमें पद्मासन और स्वस्तिकासन

(तत्र) स्थिर–सुखमासनम्॥४॥

(पा॰ द॰ २/४६)

जिन आसनोंके नाम मैंने पहले हठयोगके विवरणमें बताये हैं, वे सभी आसन राजयोगमें भी ग्रहण करने योग्य हैं। पद्मासन या स्वस्तिकासन राजयोगमें प्रसिद्ध हैं। पद्मासन यथा—

उर्वोरु–परिविन्यस्य सम्यक् पादतले उभे।
अङ्गुष्ठौ च निबध्नीयात् हस्ताभ्यां व्युतक्रमात्तथा॥

अर्थात् दोनों पाँवके तलवोंको दोनो जांघोपर सुन्दर रूपसे रखकर दोनों पैरोंके अँगूठोंको दोनों हाथोंसे पकड़े। पुनः स्वतिकासन यथा—

जानूर्वोरन्तरे योगी कृत्वा पादतले उभे।
ऋजुकायः समासीनः स्वस्तिकं तत् प्रचक्ष्यते॥

अर्थात् घुटने और जांघके बीच दोनों तलवोंको रखकर सीधा बैठनेका नाम स्वस्तिकासन है।

(४) प्राणायाम—रेचक, पूरक और कुम्भक द्वारा ही सिद्ध

तस्मिन् सति श्वास–प्रश्वासयोर्गति–विच्छेदः प्राणायामः॥

(पा॰ द॰ २/४९)

आसन हो जानेके बाद श्वास–प्रश्वासकी गति–विच्छेद–लक्षण प्राणायामका अभ्यास करेंगे। जो वायु नाकके छिद्र द्वारा बाहर निकलती है, वह रेचक या श्वास कहलाती है। जो वायु नाकके छिद्र द्वारा अन्दर गमन करती है, वह पूरक अर्थात् प्रश्वास कहलाती है। जो वायु अन्तःकरणमें स्तम्भित होती है अर्थात् ठहरती है, वह कुम्भक कहलाती है। रेचक, पूरक और कुम्भक द्वारा प्राणायाम सिद्ध होता है।

यम–नियम सिद्ध व्यक्ति आसनके पश्चात् प्राणायामका अभ्यास करेंगे।

(४) प्राणायाम–कार्य

(स तु) बाह्याभ्यान्तर स्तम्भवृत्तिर्देश–काल–संख्याभिःपरिदृष्टा दीर्घ–सूक्ष्मः ॥६ ॥

(पा॰ द॰ २/५०)

बाह्याभ्यान्तर स्तम्भ–वृत्तिरूप प्राणायाम–कार्यमें (क) देशसम्बन्धी, (ख) कालसम्बन्धी और (ग) संख्यासम्बन्धी अनेक विधियाँ हैं।

(क) देशसम्बन्धी विधि—इस प्रकार है—साधक पवित्र, समान और निर्विरोधी स्थानमें, जहाँ उसका शरीर, मन और बुद्धि निश्चल हो सके, चेलाजिन कुशासन[१] पर बैठकर प्राणायामका अभ्यास करें। उस स्थानके निकट स्वच्छ जलाशय होना चाहिये और गृह साफ–सुथरा होना चाहिये। वहाँकी वायु स्वास्थप्रद होनी चाहिये। लघुपाक आहार आदि, जो साधकको प्रिय हो, वहाँ वह बिना कष्टके प्राप्त हो सके। किसी प्रकारकी कोई गड़बड़ी न हो। साँप, बिच्छू और मच्छर आदिका उत्पात न हो। वह स्थान स्वदेशसे दूर भी नहीं हो और अपना घर भी नहीं हो।

(ख) कालसम्बन्धी विधि—इस प्रकार है—शीतका प्रारम्भ अथवा शीतका अन्त प्राणायाम करनेका प्रशस्त काल है। प्रातः, मध्याह्न, अपराह्न और अधिक रातमें प्राणायामका अभ्यास ठीक प्रकारसे होता है। अभुक्त–कालमें अथवा भोजनके बाद प्राणायाम नहीं करना

. . . .

[१] ऐसा कुशासन जो मृगछाल तथा कोमल वस्त्र द्वारा ढका हुआ हो।

चाहिये। विशेषकरके कम भोजन आवश्यक है। मादक द्रव्य एवं मांस-मछली आदि निषिद्ध हैं। अम्ल, रुक्ष, लवण और दाहकर द्रव्य निषिद्ध हैं। थोड़ा मीठा और स्निग्ध द्रव्य विशेषतः खीर बीच-बीचमें सेवन करनी चाहिये। प्रातः अर्थात् बहुत जल्दी स्नान आदि एवं अधिक रातमें भोजन आदि अनियमित कार्य निषिद्ध हैं।

(ग) संख्यासम्बन्धी विधि—सर्वप्रथम आसनपर बैठकर सोलह संख्यक बीज मनन करते हुए इडा अर्थात् चन्द्र-नासिकाके द्वारा वायु पूरन करना चाहिये। चौंसठ संख्या जप करने तक उस वायुका कुम्भक करना चाहिये। उसके बाद बत्तीस संख्या जप करने तक उस वायुका रेचन करना चाहिये। उसके बाद सूर्य-नासिका अर्थात् पिङ्गला द्वारा सोलह मात्रा पूरनकर चौंसठ मात्रा कुम्भकके अन्तमें बत्तीस मात्रा इडा द्वारा रेचन करना चाहिये। पुनः इडा द्वारा पूरनकर कुम्भकके अन्तमें पिङ्गला द्वारा पूर्व मात्रा-क्रमसे रेचन करना चाहिये। इस प्रकार तीन बार करनेसे मात्र एक प्राणायाम होता है। नासिकाके बाएँ छेदको इडा या चन्द्र कहते हैं तथा दाएँ छेदको पिङ्गला या सूर्य कहते हैं। कुम्भक रन्ध्रका नाम सुषुम्ना है। मतान्तरमें सर्वप्रथम रेचक ही आरम्भ होता है, किन्तु सर्वत्र ही फल एक समान होता है।

'मात्रा' द्वारा नाड़ीको शुद्ध करनेके उपरान्त ही प्राणायामका कुम्भक साधित होता है

एक-एक बार कर बारह बार प्राणायाम अभ्यास करनेसे **अधम-मात्रा** साधित होती है। सोलह बार अभ्यास करनेसे **मध्यम-मात्रा** और बीस बार होनेसे **उत्तम-मात्रा** साधित होती है। सभी मात्राएँ प्रातः, मध्याह्न, अपराह्न, सन्ध्याके बाद और मध्य रात्रिमें—पाँच बार करनी पड़ती है।

तीन महीनों तक इस प्रकार करनेसे नाड़ी शुद्ध होती है। नाड़ी शुद्ध होनेपर केवल कुम्भक नामक प्राणायामका चतुर्थ अङ्ग साधित होता है। यथा पतञ्जलि—

बाह्याभ्यान्तर–विषयाक्षेपी चतुर्थः ॥७॥

(पा॰ द॰ २/५१)

‘केवल’ नामक चतुर्थ कुम्भकमें रेचक–पूरकसे रहित प्राणायाम होता है।

कुम्भकके उत्तम रूपसे साधित होनेपर दो महान् फल होते हैं। प्रथमतः मनका प्रकाशावरण क्षय होता है। द्वितीयतः धारणा कार्यमें मनकी योग्यताका उदय होता है।

(५) प्रत्याहार

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार।
इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ॥८॥

(पा॰ द॰ २/५४)

जिस इन्द्रियका जो विषय है, उसमें इन्दियका ‘सम्प्रयोग’ नहीं कर चित्तस्थ इन्द्रिय–‘मात्रा’ स्वरूपमें इन्द्रियोंको अवस्थित करनेका नाम है—प्रत्याहार। क्रमशः दर्शन–वृत्तिको तत्–वृत्ति रूपमें चित्तस्थ रखनेका अभ्यास करनेसे नेत्र–इन्द्रियका प्रत्याहार होता है। इसी प्रकार सभी इन्द्रियोंका प्रत्याहार कर सकनेपर क्रमशः चित्तवृत्तिका निरोध और विषय–लालसाका अभाव होता है। एकमात्र साधक ही इस प्रक्रियाका अनुभव कर सकते हैं। इसका अभ्यास करनेसे मुझे विशेष फल प्राप्त हुआ था।

(६) धारणा

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा॥९॥

(पा॰ द॰ ३/१)

नाभि, नासिका आदि किसी–किसी स्थान–विशेषमें चित्तके बन्धनका नाम धारणा है। ध्यानकी सहायता और समाधिका उदय ही धारणाका चरम फल है। किन्तु, धारणा–कालमें अनेकानेक विभूतियोंका उदय होता है, इस प्रसङ्गमें इसे कहनेका मैं कोई प्रयोजन नहीं समझता हूँ। केवल इतना ही जानना चाहिये कि जो परमार्थका अन्वेषण करते हैं, वे विभूतिके पीछे नहीं भागते हैं। धारणा–कालमें

अनेक विभूतियाँ उदित होती हैं, किन्तु वैष्णवलोग उन्हें ग्रहण नहीं करते हैं। हठयोगमें जिसे मुद्रा कहते हैं, उसे ही दार्शनिक योगिगण धारणा कहते हैं।

(७) ध्यान

तत्र प्रत्ययैकतानता-ध्यानम्॥१०॥

(पा॰ द॰ ३/२)

जिस अङ्गमें धारणा साधित हुई है, उस अङ्गमें ज्ञानकी एकतानताका नाम ध्यान है। यथा—जिस समय श्रीकृष्णके चरणमें धारणा साधित होती है, उस धारणामें भगवान्‌के चरणोंमें जो एकतान ज्ञान या प्रत्यय है, वही चरण-ध्यान नाम प्राप्त करता है। धारणाके स्थिर नहीं होनेसे ध्यानकी स्थिरता सम्भव नहीं है।

(८) समाधि—राजयोगमें समाधिकी अवस्थामें प्रेमका आस्वादन सम्भवपर

तदेवार्थमात्र-निर्भासं स्वरूप-शून्यमिव समाधिः॥११॥

(पा॰ द॰ ३/३)

ध्यानमें भी धारणागत अर्थमात्रका प्रकाश होता है, किन्तु जिस अवस्थामें स्वरूप शून्यकी भाँति प्रकाशित होता है, वैसी अवस्थाका नाम समाधि है। जो निर्विशेषवादी हैं, वे समाधि लाभ करनेके बाद और 'विशेष' नामक धर्मको लक्ष्य नहीं करते हैं। हठयोगकी चरम अवस्थामें ऐसी ही समाधि [अर्थात् जिसमें 'विशेष' को लक्ष्य नहीं किया जाता] उदित होती है। [किन्तु] राजयोगमें समाधिकी अवस्थामें प्रकृतिसे अतीत तत्त्वकी उपलब्धि होती है। उस समाधिकी अवस्थामें विशुद्ध प्रेमका आस्वादन होता है। इस विषयको वाणीके द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता है। जिस समय आप ऐसी समाधि प्राप्त करेंगे, उसी समय इस अवस्थाको भी भलीभाँति समझ पायेंगे। जो कुछ मैंने कहा, इसके अतिरिक्त बातोंका उपदेश वाणीके द्वारा नहीं दे सकता हूँ।"

मल्लिक महाशयका राजयोग–शिक्षा हेतु आग्रह

इतना कहकर योगी बाबाजी शान्त हो गये। वक्तृताके समय मल्लिक महाशयने सभी बातोंको थोड़ा–थोड़ा संक्षेपमें लिख लिया था। जब समाधि तक का उपदेश समाप्त हो गया, तब वे बाबाजीके चरणकमलोंमें पड़कर बोले—"प्रभो! इस दासके प्रति कृपा करते हुए योगाभ्यासकी शिक्षा प्रदान करें। मैंने अपने जीवनको आपके चरणोंमें बेच डाला।"

मल्लिक महाशयको उठाकर आलिङ्गन करते हुए बाबाजीने कहा—"एकान्तमें बैठकर योगाभ्यास करना होगा। आज रातमें आप योगाभ्यास आरम्भ कर सकते हैं।"

नरेन बाबू और आनन्द बाबूने बाबाजीके पाण्डित्य एवं गम्भीरतासे क्रमशः प्रसन्न होकर श्रद्धापूर्वक नम्रतासे अपना मस्तक झुकाकर प्रणाम किया।

बाबाजीके निकट शिक्षाके लिए आनन्द और नरेन बाबूका प्रस्ताव

आनन्द बाबूने कहा—"बाबाजी महाशय! हमलोग सिंहकी भाँति आये थे, किन्तु अब कुत्तेके समान हो गये हैं। आनेके समय मनमे सोचा था कि पौत्तलिक पूजा और निरर्थक व्रत आादिमें व्यस्त होकर हिन्दू समाजने सामाजिक जीवनका परित्याग किया है। ब्राह्मधर्मका प्रचारकर हमलोग पुनः उन्हें सामाजिक जीवन प्रदान करेंगे। हमलोगोंके मनमें था कि वैष्णवगण तत्त्वज्ञानमें क्षमताहीन होकर केवल दूसरोंकी बातोंमें आकर व्यर्थमें ही संसारको छोड़ देते हैं। वैराग्य–ग्रहण केवल वैष्णवी (वैष्णव–पदवी) प्राप्त करनेके उपायस्वरूप है। हमलोग ब्राह्मधर्मके आलोक द्वारा वैष्णवोंके चित्तका अन्धकार दूर कर देंगे। अभी बहुत कम दिन हुए हैं, हमलोग आपके श्रीचरणोंमें आये हैं, किन्तु आपके आचार–व्यवहार, पाण्डित्य और पारमार्थिक प्रेमको देखकर हमलोगोंके कुसंस्कार दूर हो गये हैं। क्या कहूँ! अब हमलोगोंने यह स्थिर किया है कि आपके श्रीचरणोंमें रहकर हम अनेक तत्त्व–विषयकी शिक्षा ग्रहण करेंगे।"

वैष्णव निर्दोष होनेपर भी पौत्तालिक है—इस संशयके समाधान हेतु बाबाजीसे प्रश्न

बाबाजीके चरणोंमें दण्डवत्-प्रणामकर नरेन बाबूने विनीत भावसे कहा—"यदि हमारे प्रति कृपा हो, तो हमारे कुछ संशयोंको दूरकर मानसिक क्लेशसे हमलोगोंका उद्धार करें। इस बातको तो मैं निश्चय ही समझ चुका हूँ कि वैष्णवधर्म अत्यन्त दोषरहित है। जिन-जिन विषयोंको दोष कहकर हमारे तार्किक अन्तःकरणमें कुतर्क उठ रहे थे, वे सभी वास्तवमें दोष अथवा भ्रम नहीं, बल्कि किसी प्रकारके भङ्गिविशेष हैं। भङ्गिक्रमसे कोई दूरवर्ती तत्त्व लौकिक रूपमें वर्णित हुआ है। आप जैसे महानुभव पण्डितगण किसी भ्रमकी पूजा करेंगे, ऐसा बोध नहीं होता।"

बाबाजीके द्वारा वैष्णव और वैष्णवधर्मके तत्त्वकी आलोचना

बाबाजीने मुस्कराते हुए कहा—"बाबूजी! आप सत्यके निकटस्थ हुए हैं। वैष्णवतत्त्व वास्तवमें 'अपरोक्षवाद' है, जो हठात् सुना जाये या देखा जाये, वैसा नहीं। वैष्णवतत्त्व सम्पूर्ण अप्राकृत-विषयक हैं अर्थात् वैष्णवधर्मके समस्त इतिहास, वर्णना और विवरण प्रकृतिसे अतीत जगत्से सम्बन्धित है। साधारण लोगोंके निकट उस जगत्को 'वैकुण्ठ' कहता हूँ। उस जगत्में जो विचित्रता और विशेषत्व है, वह कथाके रूपमें नहीं कहा जा सकता तथा उसका मनसे ध्यान भी नहीं किया जा सकता, क्योंकि कथा और मन सर्वदा ही भौतिक चेष्टाओंमें आबद्ध है। भौतिक जगत्में उन-उन विषयोंके 'सदृश' जो समस्त तत्त्व हैं, उनका अवलम्बन करते हुए वैकुण्ठतत्त्व, वैष्णवधर्ममें वर्णित एवं व्याख्यात हुआ है। वैष्णवधर्म परम समाधियोगमें विवेचित तथा पर्यावेक्षित हुआ है। इसीलिए इसमें युक्तिवादसे उत्पन्न धर्मोंकी अपेक्षा निर्दोष और गूढ़ सत्यसमूह प्राप्त होते हैं। जो समस्त धर्म युक्ति द्वारा निर्णीत होते हैं, वे सभी धर्म क्षुद्र और असम्पूर्ण होते हैं। किन्तु, समाधियोगमें जिस धर्मका अनुसन्धान पाया गया है, उसे ही जीवका नित्य-धर्म समझें। प्रेम

ही वैष्णवधर्मका जीवन है, प्रेम कदापि युक्तिके अनुगत धर्म द्वारा साधित नहीं हो सकता है। परम सौभाग्यक्रमसे आपलोग वैष्णवप्रेमके प्रति आकृष्ट हुए हैं। आज प्रसाद–सेवाके बाद आपके सभी संशयोंको श्रवणकर यथासाध्य उन्हें दूर करनेकी चेष्टा करूँगा।"

श्रीमूर्त्तिके दर्शनसे बाबाजीके साथ दोनों बाबुओंका नृत्य–कीर्त्तन

उसी समय ठाकुरजीके गृहका शंख बज उठा। बाबाजीने कहा—"पूजा समाप्त हो गयी है। चलें, हमलोग श्रीमूर्त्तिका दर्शन करें।"

सभी लोग उठकर हाथ जोड़कर भगवान्‌का दर्शन करने लगे। बाबाजीके नत्रोंसे अविरल प्रेमाश्रु बहने लगे और वे इस पदको गाते हुए नृत्य करने लगे—

"जय राधे कृष्ण, जय राधे कृष्ण,
जय वृन्दावन–चन्द्र।"

बाबाजीके नृत्य और प्रेमको देखकर मल्लिक महाशय भी नृत्य करने लगे।

नरेन बाबूने आनन्द बाबूसे कहा—"हमलोग भी नृत्य करते हैं, यहाँ ऐसा कोई नहीं है, जो हमलोगोंका उपहास करेंगे। यदि आज संशय दूर हो जाये, तो 'राधाकृष्ण' बोलनेमें और लज्जा नहीं करूँगा।" ऐसा कहकर दोनों ताली बजाते हुए बाबाजीके साथ नृत्य करने लगे। पुजारी महाशय चरणामृत ले आये और सबने उसका पान किया। कुछ देर बाद अन्नका भोग भी लग गया।

बाबाजी और अन्य तीनों बाबुओंने विशेष श्रद्धाके साथ प्रसाद–सेवा की।

पञ्चम प्रभा समाप्त

षष्ठ प्रभा

नरेन बाबूके निकट ब्राह्माचार्यका पत्र और उसका फल

बहुत समयसे वर्षा नहीं होनेके कारण अंशुमाली (सूर्य) की किरणें बहुत प्रचण्ड हो गयी हैं। प्रसाद-सेवा करनेके उपरान्त योगी बाबाजी उनलोगोंको लेकर पञ्चवटीकी छायामें बैठ गये। मन्द-मन्द वायु प्रवाहित हो रही थी। अनेक प्रकारकी बातें होने लगी। उसी समय डाकिया दो पत्र लेकर उपस्थित हुआ। एक पत्र नरेन बाबूने ग्रहण किया एवं और एक पत्र मल्लिक महाशय लेकर पढ़ने लगे।

उन्होंने नरेन बाबूका पत्र सभामें पाठ करते हुए कहा कि कलकत्ताके ब्राह्माचार्यने लिखा है—

नरेन बाबू,

लगभग दस दिनसे तुम्हारा कोई पत्र प्राप्त नहीं हुआ। पवित्र ब्राह्मधर्म तुमसे अनेक आशाएँ करता है। वृन्दावन प्रदेशके युवकोंके मनको पौत्तलिक-धर्मके गर्त्तसे उद्धार करनेकी चेष्टा करना। वैष्णवोंमें केवल कीर्त्तनका सुर ही अच्छा है और कुछ भी नहीं। यदि सम्भव हो तो कुछ समयमें ही किसी नये स्वरकी शिक्षा ग्रहण करके आना, यहाँ हरेन्द्र बाबू उसी स्वरमें ब्राह्म सङ्गीत प्रस्तुत करेंगे। ब्राह्मधर्मके प्रचारके सम्बन्धमें तुम जो कर रहे हो, उसकी साप्ताहिक रिपोर्ट भेजना। तुम्हारा आनुकूल्य पिछले महीनेसे बाकी पड़ा हुआ है। यह मैं तुम्हें अवगत करा रहा हूँ।

तुम्हारा हार्दिक बन्धु—

----श्री-----

नरेनबाबू पत्र पाठ करके कुछ मुस्कराते हुए धीरे-धीरे कहने लगे—"क्या होगा वह देखेंगे। ऐसा लगता है कि ब्राह्म समाजके आनुकूल्यको मेरी आशा नहीं करनी पड़ेगी।"

मल्लिक महाशयके निकट नित्यानन्द बाबाजीका पत्र

नरेन बाबूके पत्रका पाठ होनेके उपरान्त मल्लिक महाशय प्रसन्नतापूर्वक अपना पत्र पढ़ने लगे। आहिरीटौलासे नित्यानन्द दास बाबाजीने लिखा है—

सभीके लिए मङ्गल कामना,

आपका पारमार्थिक कुशल–संवाद प्राप्त करनेके लिए मैं विशेष चिन्तित हूँ। गत रात्रि मैंने स्वप्नमें देखा कि आप वैष्णव–वेश धारण करके कीर्त्तन–समाजमें नृत्य कर रहें हैं। यद्यपि यही सत्य हो, तथापि मेरे लिए यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि आपने योगी बाबाजीके साथ साधुसङ्ग प्राप्त किया है। इस कारणसे आपने अवश्य ही हरिभक्ति–लताका बीज प्राप्त किया होगा। इसमें सन्देह नहीं है। जैसा कि श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीने कहा है—

ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान् जीव।
गुरु–कृष्ण–प्रसादे पाय भक्ति–लताबीज॥
(चै॰ च॰ म॰ १९/१५१)

जैसा भी हो, मैं जानता हूँ कि आप योगाभ्यास करनेके विशेष इच्छुक हैं, परन्तु केवल शुष्क योगका अभ्यास नहीं करें। बाबाजी योगी होनेपर भी परम रसिक हैं। उनके निकट कुछ रसतत्त्व शिक्षा ग्रहण करेंगे। यदि सम्भव हो, तो बाबाजीकी अनुमति ग्रहणकर परमाराध्य पण्डित बाबाजीका दर्शन करेंगे। किन्तु दुःखका विषय है कि आप वैष्णवोंके अतिरिक्त जिन लोगोंसे सङ्ग करते हैं, वह सङ्ग अच्छा नहीं है। ब्राह्म, क्रिश्चियन और मुस्लिम धर्मके अनुयायी अत्यन्त युक्तिप्रिय और तर्कपरायण होते हैं। उनका सङ्ग करनेसे सरस चित्तके रसका भण्डार शुष्क हो जाता है। एकमात्र परमेश्वर ही सर्वकर्त्ता हैं एवं उनकी उपासना करना ही सभीका कर्त्तव्य है—यह जानना ही यथेष्ट नहीं है। उपासना दो प्रकारकी होती है—बहिरङ्ग और अन्तरङ्ग। बहिरङ्ग उपासना युक्तिके अधीन है। वह प्रार्थना, वन्दनादि कृतज्ञता और कर्त्तव्यता–बुद्धिसे उत्पन्न होती है। अन्तरङ्ग उपासनामें ये समस्त भाव नहीं होते हैं, अपितु उपासनाके समस्त

कार्य किसी अनिर्वचनीय गूढ़ आत्मरतिसे स्वभाविक रूपमें होते हैं।

आशा करता हूँ कि कङ्गाल वैष्णवका इङ्गित समझकर कार्य करेंगे। आज यहीं तक रहे।

अकिञ्चन
श्रीनित्यानन्द दास।

पत्रका श्रवण करके दोनों बाबुओंके द्वारा अपने जीवनपर धिक्कार

नरेन बाबूने बड़े ध्यानसे पत्रको सुना और निःश्वास परित्याग करते हुए कहा—"शुष्क युक्तिवादको धिक्कार है। बाबाजीने जो लिखा है, वह नितान्त सत्य है। आनन्द बाबू, हाय! हमने इतने दिनोंतक निन्यानन्द दास बाबाजीसे क्यों नहीं कोई आलाप किया? बाबाजी मल्लिक महाशयके निकट आते थे। हमलोग कुसङ्ग समझकर उन्हें देखनेमात्रसे ही चले जाते थे। परमेश्वर हरि यदि हमें दुबारा कलकत्ता ले जायें, तभी अपने अपराधके लिए हम क्षमा याचना करेंगे।"

कीर्त्तन करते हुए दो बाऊल बाबाजी लोगोंका प्रवेश

नरेन बाबूकी बातें समाप्त भी नहीं हुई थीं कि उसी समय दो बाउल बाबाजी उपस्थित हुए। उनके हाथोंमें करङ्गा और गोपीयन्त्र, चेहरेपर दाढ़ी-मूँछें, चूड़ा बनाकर बाँधे हुए केश, परिधानमें कौपीन और बहिर्वास था। दोनों बाबाजी यह गान गाते-गाते उपस्थित हुए—

आर! गुरु-तत्त्व जेने कृष्ण-धन चिनले ना।
ध्रुव-प्रह्लादेर मत एमन भक्त आर हबे ना॥

देख चातक-नामे एक पक्षी, तारा कृष्णनामे हय दक्ष।
केवल मात्र उपलक्ष, वने, बले फटिक जल दें ना॥

तारा नवघन वारि-बिने, अन्य वारि पान करे ना।
देख सर्वअङ्गे, भस्म माखा, आर सर्वदा श्मशाने थाका॥

गाँजा भांग धूतूरा फाँका, भाव–रसे हय मगना।
से जे त्रिपुरारि, प्रेम–भिखारी, कृष्णपद वै जाने ना॥

जाते अति अपकृष्ट, मुचिरामदास प्रेमीर श्रेष्ठ।
महा–भावेते निष्ठ, करे इष्ट–साधना॥

तार मन ये चाङ्गा, काटुयाय गङ्गा, गङ्गाते गङ्गा थाके ना।

बाऊल सम्प्रदाय वास्तवमें अद्वैतवादी

वे गीत समाप्त होनेके उपरान्त और थोड़ा विश्राम करके योगी बाबाजीसे आज्ञा लेकर पश्चिम दिशाकी ओर चले गये।

आनन्दबाबू ने पूछा—"ये लोग कौन हैं?"

बाबाजीने कहा—"ये लोग बाउल सम्प्रदायके बाबाजी हैं। इनके मत और हमारे मतमें पार्थक्य है। यद्यपि ये लोग श्रीचैतन्य महाप्रभुका नाम लेकर घूमते हैं, तथापि हमलोग इन्हें वैष्णव–भ्राता नहीं कहेंगे। क्योंकि ये लोग अनेक स्वकपोलकल्पित मतका अवलम्बन करते हैं। ये वस्तुतः अद्वैतवादी हैं।"

चारों वैष्णव–सम्प्रदायोंको चार आचार्य और उनके मतमें ऐक्य और साम्य

नरेन बाबुने विनीत भावसे पूछा—"बाबाजी महाशय! वैष्णवधर्मकी कितनी प्रधान शाखाएँ हैं एवं किन–किन विषयोंमें सभी शाखाओंका मत एक है?"

बाबाजीने कहा—"वैष्णवधर्ममें चार प्रधान सम्प्रदाय हैं। उनके नाम हैं—श्री–सम्प्रदाय, माध्व–सम्प्रदाय, विष्णुस्वामी–सम्प्रदाय एवं निम्बादित्य–सम्प्रदाय। श्रीरामानुजस्वामी, श्रीमध्वाचार्य स्वामी, श्रीविष्णुस्वामी एवं श्रीनिम्बादित्यस्वामी—ये चारों ही क्रमशः इन मतोंके आदि प्रचारक हैं। इन सभीने दाक्षिणात्य प्रदेशमें जन्म ग्रहण किया। निम्नलिखित विषयोंमें सभी वैष्णव सम्प्रदायोंके मत एक है—

(१) परमेश्वर एक एवं अद्वितीय हैं। वे सर्वशक्तिमान एवं सभी विधियोंके विधाता हैं।

(२) परमेश्वरका एक परमसुन्दर सर्वमङ्गलमय अप्राकृत स्वरूप है। वह स्वरूप भौतिक जगत्‌की समस्त विधियोंसे अतीत है। उनमें समस्त विपरीत धर्मसमूह अपूर्व रूपमें सामञ्जस्यके सहित व्याप्त हैं। उनका श्रीविग्रह होनेपर भी वे सर्वव्यापी हैं। वे सुन्दर होनेपर भी भौतिक इन्द्रियगम्य नहीं है। एक स्थानपर अवस्थान करनेपर भी वे एक ही समय सम्पूर्ण रूपसे सर्वत्र अवस्थित करते हैं।

(३) जड़ और जैव जगत् उनकी शक्तिसे प्रकट हुए हैं। वे देश-काल और सभी विधि-विधानोंके कर्त्ता, धर्त्ता और संहारक हैं।

(४) जीव स्वरूपतः अप्राकृत है। किन्तु भगवत्-इच्छासे जड़में आबद्ध होकर जड़धर्मानुगत सुख-दुःख भोग करते हैं। भगवत्-भक्तिके द्वारा ही जीवको जड़से छुटकारा मिलता है।

(५) ज्ञान एवं कर्मका पथ अत्यन्त दुर्गम है। भक्तिके अनुगत ज्ञान और कर्ममें कोई दोष नहीं है। किन्तु भक्ति—ज्ञान और कर्मसे एक स्वाधीन तत्त्व है।

(६) साधुसङ्ग और भक्तिकी आलोचना करना ही जीवोंका एकमात्र कर्त्तव्य है।

"विवेचना करके देखनेपर यह स्पष्ट होता है कि सभी वैष्णव-सम्प्रदायोंमें एकमत है। केवल क्षुद्र-क्षुद्र विषयोंमें कुछ-कुछ मतभेद हैं। सभी वैष्णव जीवको तत्त्वतः ईश्वरसे भिन्न तत्त्व समझते हैं। सभीने भक्तिमार्गका अवलम्बन किया है।

श्रीचैतन्यदेव माध्व-सम्प्रदायी; नेड़ा-दरवेश-साँई आदि धर्मध्वजी अवैष्णव

"महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवने स्वयंको माध्व-सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त माना है। इसलिए हम सभी माध्व-सम्प्रदायी हैं। बाउल, साँई, नेडा, दरवेश, कर्त्ताभजा, अतिबाड़ी आदि जितने मत हैं, वे सभी अवैष्णव मत हैं। उनके उपदेशों और कार्योंमें बहुत अन्तर हैं। अनेक लोग उनके मतकी आलोचना करके वैष्णवधर्मके प्रति अश्रद्धा करते

हैं। किन्तु वास्तविक वैष्णवधर्म इन समस्त धर्मध्वजियोंके दोषके लिए दायी नहीं ठहराया जा सकता।

बङ्गदेशमें महाप्रभुके द्वारा प्रचारित वैष्णवधर्म ही अत्यन्त प्रबल है। गोस्वामी महाजनोंने जो मत प्रचार किया है, वही ग्रहणीय है। बाउलोंका मत ग्रहणीय नहीं है।"

गोस्वामियोंके ग्रन्थोंमें ही श्रीमन् महाप्रभुका मत विशुद्ध भावसे लिपिबद्ध

नरेन बाबूने पूछा—"श्रीचैतन्य महाप्रभुने अपने मतको क्या किसी पुस्तक–विशेषमें लिपिबद्ध किया है?"

बाबाजीने कहा—"नहीं, महाप्रभुजीने कोई पुस्तक नहीं लिखी है। उनके पार्षदोंने जिन पुस्तकोंको लिखा है, उन्हींमें उनका मत विशुद्ध रूपमें लिपिबद्ध है। श्रीसनातन गोस्वामी, श्रीरूप गोस्वामी, श्रीजीव गोस्वामी और श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी—इन चारों श्रीचैतन्य पार्षद महाजनोंने जो पुस्तके लिखी हैं, वे ही सर्वमान्य हैं।"

नरेन बाबूने जिज्ञासा की—"बाबाजी! उन्होंने किन–किन पुस्तकोंको लिखा है? और वे सभी कहाँ प्राप्त होंगी?"

बाबाजीने कहा—"उन्होंने अनेक पुस्तके लिखीं हैं, उन सभी पुस्तकोंका नाम लेनेमें बहुत समय लगेगा। दो–एक ग्रन्थोंके नामका उल्लेख करता हूँ। श्रीजीव गोस्वामीने जिस षट्सन्दर्भकी रचना की है, उसमें सम्पूर्ण भक्तितत्त्वकी विशेष रूपसे व्याख्याकी गयी है। भक्तिके सम्बन्धमें जो कुछ भी कहा जा सकता है, उस सबका इस ग्रन्थमें वर्णन है।

सभी विषयों और तत्त्वोंमें विज्ञान विद्यमान है, उन सभीमेंसे भक्ति–विज्ञान ही श्रेष्ठ

जागतिक विषयोंका अपना अलग–अलग विज्ञान है। विद्युत्–तत्त्व, जलतत्त्व, धूमतत्त्व, प्राणीतत्त्व, सङ्गीततत्त्व—इन सभीका अलग–अलग विज्ञान है। यह विज्ञान ठीक रूपसे आलोचित

नहीं होनेपर इन सभीका तत्त्वज्ञान नहीं होता है। जगत्में जितने भी विषय हैं उन सभीकी अपेक्षा भक्तितत्त्व सबसे कठिन तत्त्व है। इस प्रकारके विषयका यदि कोई विज्ञान नहीं हो, तब भक्तितत्त्व किस प्रकार आलोचित होगा? आधुनिक धर्मोंमें भक्तिका विज्ञान नहीं दिखायी देता है। आर्य पुरुषोंके मस्तिष्कसे सनातन-धर्मका उदय हुआ है। उसमें भी वैष्णवतत्त्व सर्वोपरि है। इसलिए एकमात्र वैष्णवधर्ममें ही केवल भक्ति-विज्ञानकी सम्भावना है। श्रीजीव गोस्वामीके सन्दर्भ एवं श्रीरूप गोस्वामीके भक्तिरसामृतसिन्धु ग्रन्थमें भक्ति-विज्ञानका विशेष रूपमें विवेचन हुआ है। ये दोनों ग्रन्थ कहीं-कहीं प्रकाशित हो रहे हैं। मेरा विशेष अनुरोध है कि आप ये दोनों ग्रन्थ पाठ करें।"

भक्तिशास्त्रोंके अध्ययन और तर्क द्वारा भक्ति उदित नहीं होती

नरेन बाबूने कहा—"अब मेरी समझमें आया कि भक्ति-विज्ञान शास्त्रको जो लोग नहीं जानते हैं, उनकी भक्ति अतिशय संकीर्ण है।"

बाबाजीने कहा—"नरेन बाबू! मैंने ऐसा नहीं कहा। भक्ति ही जीवोंका स्वधर्म है, अतएव सहज है। भक्ति किसी पुस्तकसे प्रकटित नहीं हुई है, बल्कि भक्तिशास्त्र भक्तिसे प्रकटित हुए है। केवल भक्तिशास्त्र पाठ करनेसे ही भक्ति होती है, ऐसा नहीं देखा जाता। बल्कि मूर्ख-विश्वास [अर्थात् अपनी बुद्धिका व्यवहार न करके, केवल महाजनोंकी वाणीपर सम्पूर्ण विश्वास रखकर जो साधन-भजन करते हैं, उनमें उसी] से जिस प्रकार जितनी भक्तिका उदय होता है, अनेक प्रकारके तर्कके द्वारा वैसा नहीं होता है। सभी आत्माओंमें ही भक्तिका बीज है। उस बीजको अङ्कुरित और धीरे-धीरे वृक्ष रूपमें परिणत करनेके लिए मालीकी आवश्यकता होती है। भक्तिशास्त्रोंकी आलोचना, परमेश्वरकी उपासना, साधुसङ्ग और भक्त-सेवित स्थानमें वास आदि कुछ कार्योंकी आवश्यकता होती है। भक्ति-बीज अङ्कुरित होते समय भूमिको साफ करना, काँटे

और कङ्कड आदिको दूर करने जैसे कार्योंकी नितान्त आवश्यकता होती है। भक्ति–विज्ञानको जान लेनेपर ये समस्त कार्य सुचारु रूपमें हो सकते हैं।”

कृष्णको मनुष्य ज्ञान करनेके कारण ईश्वर–तत्त्वके सम्बन्धमें प्रश्न

नरेन बाबुने कहा—“बाबाजी महाशय! मेरा एक बहुत बड़ा संशय है, उसे दूर करनेकी कृपा कीजिये। जीवोंकी भक्ति परमेश्वरको अर्पित होनेपर वह उत्तम होती है। कृष्णको अर्पित होनेपर भक्ति किस प्रकार उत्तम हो सकती है? क्या कृष्ण परमेश्वर है? हमने श्रवण किया है कि कृष्णने किसी समय जन्म ग्रहण करके कुछ दिन अनेकों कार्य किये और अन्तमें एक व्याधके हाथसे प्राणत्याग किया। यदि ऐसा है, तो कृष्णको भक्ति अर्पित करनेपर किस प्रकार ईश्वर–भक्ति हो सकती है?

जिस किसी मनुष्यकी भक्ति करनेसे क्या परमेश्वरकी भक्ति हो सकती है? मेरे विचारसे कृष्णको परित्याग करके चैतन्यकी भक्ति करनेसे अधिक मङ्गल होगा, क्योंकि साधुचरित्रमें ईश्वरके अनेकों गुण रहते हैं।”

कर्मी, ज्ञानी और भक्तके भेदसे एक ही भगवत्–तत्त्वके विभिन्न प्रकाश

बाबाजीने कहा—“नरेन बाबु! यदि श्रीकृष्णका ही परित्याग हुआ, तब वैष्णवधर्मका क्या गौरव रहेगा। ‘एकेश्वरवाद’ धर्म अनेकों हैं, किन्तु इन सभी धर्मोंमें रस नहीं हैं, क्योंकि उनमें परात्पर श्रीकृष्ण नहीं हैं। साधन–कार्यमें तीन विषय है—अर्थात् साधक, साधन और साध्यवस्तु। भक्तिके साधन–कार्यमें भक्तिके साधक, साधन और साध्य—इन तीनोंकी ही योग्यताका प्रयोजन है। परमार्थ चेष्टामें साधन–कार्यके तीन विभाग हैं। कर्म–साधन, ज्ञान–साधन और भक्ति–साधन। **कर्म–साधनमें** साधक अत्यन्त फलकामी या

कर्त्तव्यनिष्ठ होते हैं। इसमें कर्म ही साधन है। निष्काम या सकाम होकर कर्म करना पड़ता है। इसमें साध्य परमेश्वर वा सर्वफलदाता पुरुष होते हैं। **ज्ञान–साधन**में साधक चिन्तामय, साधना चिन्ता और साध्य ब्रह्म अर्थात् कठिन चिन्ताकी लक्ष्य वस्तु है। **भक्ति–साधना**में साधक प्रीतिमय होता है और साध्य वस्तु भगवान् होते हैं।

"जिस साधककी जिस पथमें रुचि होती है, उसी पथमें उसका अधिकार है। हमलोग भक्तिके साधक हैं, इसलिए परमात्मा या ब्रह्मके साथ हमारा कोई कार्य नहीं है। भगवान्से ही हमारा एकमात्र कार्य है। इससे यह मत समझना कि परमात्मा, ब्रह्म और भगवान्—ये कोई अलग–अलग तत्त्व हैं। साध्य वस्तु एक ही तत्त्व है। केवल साधनाके भेदसे वही एक ही तत्त्व–वस्तु भिन्न–भिन्न रूपमें प्रकाशित होती हैं। इससे यह भी मत समझना कि भगवान्की अनेक अवस्थाएँ हैं। भगवत्–तत्त्व एक ही वस्तु हैं और स्वतः अवस्थाशून्य है। किन्तु परतः अर्थात् साधकके अधिकार भेदसे भिन्न प्रकाश–विशिष्ट है। आप विशेष रूपसे चिन्ता करनेपर यह बात समझ सकेंगे।"

नरेन बाबूने कहा—"बाबाजी महाशय, ये बात कुछ स्पष्ट करके कहिये। मैं कुछ–कुछ समझ तो रहा हूँ, किन्तु अन्तमें सब गड़बड़ हो जाता है।"

परमात्मा, ब्रह्म और भगवत्–तत्त्वके पार्थक्यकी आलोचना

बाबाजी—"परमात्मा, ब्रह्म और भगवान्—ये एक ही वस्तुके तीन भावमात्र हैं। जगत्की सृष्टि, स्थिति, संहारकर्त्ता, समस्त जीवोंके नियन्ता, शक्तिरूपा परात्पर भावको परमात्मा कहते हैं। परमात्मा और परमेश्वरमें एक ही भाव है। जीवोंकी उच्च दृष्टि होनेसे ही उनके हृदयमें परमात्माका आविर्भाव होता है। समस्त जगत्से अतीत अनिर्वचनीय भावको ब्रह्म कहते है। ब्रह्म विकारहीन एवं अवस्थाविहीन है। फिर भी, सभी ब्रह्मके अन्तर्गत हैं। ये ही जीवोंके द्वितीय अधिकारके भाव हैं। जीव और जड़से पृथक् स्वरूपविशिष्ट

सर्व–शक्तिमान अचिन्त्य कार्योंके सम्पादक किसी ऐश्वर्य और माधुर्यकी पराकाष्ठारूपी पुरुषको भगवान् कहते हैं। उन्हींकी शक्ति परमात्मा रूपसे जगत्‌में प्रविष्ट हैं और ब्रह्म रूपसे सर्वातीत होकर भी सर्वदा विग्रहवान और लीलाविशिष्ट हैं।"

नरेन बाबुने गहन चिन्तन करते हुए कहा—"मैंने आपके मतको अब उत्तम रूपसे अनुभव किया है। मैं देखता हूँ कि यह एक सत्य मत है—केवल तर्ककी सन्तान नहीं है अर्थात् इसमें किसी प्रकारके तर्ककी सम्भावना नहीं है। मैंने आज परमानन्द लाभ किया है। वैष्णवतत्त्व बहुत उदार है। सभी सम्प्रदायोंके मतको क्रोड़ीभूत करके स्वयं अधिकतर ज्ञानालोकसे शोभित है।"

आनन्द बाबुने कहा—"नरेन बाबु! बाबाजीके मुखारविन्दसे अमृत वर्षण होने दीजिये। मैं उसे कानोंके माध्यमसे जितना पान कर रहा हूँ, उतना ही एक अनिर्वचनीय आनन्द आकर मुझे उन्मत्त कर रहा है।"

नरेन बाबूने कहा—"आजसे परमात्मा और ब्रह्मके निकटसे विदाई ली। एकमात्र भगवान् ही हमारे हृदयसर्वस्व हुए। अच्छा हुआ, भगवान्‌को लेकर ही सन्तुष्ट रहें।"

भगवान् ऐश्वर्यमय और माधुर्यमय; नरेन और आनन्द बाबूकी माधुर्यमें स्वाभाविक रुचि

बाबाजीने कहा—"और भी विषय हैं। यह पहले ही कहा गया है कि भगवान् ऐश्वर्यमय और माधुर्यमय हैं। इसलिए भगवत्–साधक भी दो प्रकारके हैं। कोई–कोई ऐश्वर्यवान भगवान्‌का भजन करते हैं, और कोई–कोई माधुर्यमय भगवान्‌से प्रीति करते हैं। नरेन बाबू! आप किस प्रकारके साधक बनना चाहते हैं?"

नरेन बाबूने कहा—"मुझे कुछ सन्देह है। भगवान्‌को ऐश्वर्य–च्युत करनेसे उनका ईश्वरत्व कहाँ रहेगा? परन्तु 'माधुर्य' शब्द श्रवण करनेसे ही मेरा चित्त पागल हो रहा है, मैं कुछ भी समझ नहीं पा रहा हूँ।"

बाबाजीने कहा—“भगवान्‌में ऐश्वर्य और माधुर्य दोनों सदा-सर्वदा रहते है। कभी ऐश्वर्यकी प्रधानता रहती है, कभी ऐश्वर्य रहनेपर भी वह माधुर्यसे ढका रहता है। माधुर्य प्रबल होनेपर वह समस्त जगत्‌को उन्मत्त कर देता है।”

नरेन बाबू और आनन्द बाबू दोनोंने कहा—“हमलोग माधुर्यमय भगवान्‌को चाहते हैं।”

बाबाजीने कहा—“तब तुमलोग स्वाभाविक रूपमें श्रीकृष्णके भक्त हो। भगवान्‌के माधुर्यकी वृद्धि होनेपर ही श्रीकृष्ण स्वरूपका उदय होता है। इन सब विषयोंका विशेष रूपसे वर्णन भक्तिरसामृतसिन्धु ग्रन्थमें हुआ है। श्रीकृष्ण सर्वकलाविशिष्ट माधुर्यमय चन्द्रमा है। वे तुम्हारे हृदयरूपी कमलमें भलीभाँति उदित हों।”

योगी बाबाजीकी बात कभी भी निष्फल नहीं हो सकती है। नरेन बाबू और आनन्द बाबू ऐश्वर्य और माधुर्य नामक दोनों तत्त्वोंकी कुछ गम्भीरतापूर्वक आलोचना करते हुए बोले—“आजसे हमलोग कृष्णदास हैं, मुरलीधारी नवघन कृष्णचन्द्र हमारे हृदयमें सुखासीन हुए।”

बाबाजीने कहा—“देखो, कृष्णभक्तिके अतिरिक्त माधुर्यभक्तोंकी गति कहाँ है? ऐश्वर्यपरायण भक्तगण क्या निर्भय होकर नारायणचन्द्रके प्रति प्रीति-चेष्टा दिखा सकते हैं? यदि भगवान् श्रीकृष्ण नहीं होते, तब क्या सख्यरस, वात्सल्यरस और चरम रसरूप मधुररसको हमलोग उन्हें अर्पण कर सकते थे?”

नरेन बाबू और आनन्द बाबू बाबाजीकी चरणरेणु मस्तकपर धारण करके कृतकृत्य हो गये।

उन्होंने कहा—“आजसे आप हमें भक्तिरसामृतसिन्धुकी शिक्षा दीजिये।”

मल्लिक महाशय दोनोंकी यह अवस्था देखकर बहुत प्रसन्न होकर मनमें विचार करने लगे—“महानुभव गुरुदेवके लिए यह कुछ भी असम्भव नहीं है।”

बाबाजीके उपदेशसे दोनों बाबुओंके द्वारा श्रीचैतन्यचरितामृतकी आलोचना

बाबाजीने कहा—"तुमलोगोंने यद्यपि अँग्रेजी भाषामें अनेक विद्याएँ अर्जन की हैं, किन्तु संस्कृत भाषाका अध्ययन नहीं किया है। भक्तिरसामृतसिन्धु ग्रन्थ संस्कृत भाषामें है, इसलिए उसे शीघ्र नहीं समझा जा सकता। इसलिए श्रीचैतन्यचरितामृत ग्रन्थका अध्ययन करो।"

बाबाजीकी आज्ञाके अनुसार उनके एक शिष्यने श्रीचैतन्यचरितामृत ग्रन्थ लाकर उन्हें दिया। यह ग्रन्थ लेकर आनन्द बाबू और नरेन बाबू एक कुटीमें बैठकर गम्भीरतापूर्वक पाठ करने लगे। जब कभी उन्हें कोई सन्देह होता, बाबाजीके निकट आकर समझ लेते थे। आनन्द बाबू और नरेन बाबूने प्रतिज्ञा की, कि जब तक यह ग्रन्थ समाप्त नहीं होता तब तक उस कुञ्जसे बाहर नहीं जायेंगे।

तब आनन्द बाबू और नरेन बाबू एक कुटीमें बैठ गये और द्वितीय कुटीमें मल्लिक महाशय कुम्भक अभ्यास कर रहे थे। अनेक श्रोता आकर आनन्द बाबू और नरेन बाबूके निकट बैठते थे और अनेक लोग मिलकर एकस्वरसे श्रीचैतन्यचरितामृत ग्रन्थको पढ़ते, जिसे श्रवण करनेपर सभीको वह बहुत मधुर लगता था।

श्रीचैतन्यचरितामृत पाठके स्वाभाविक फल—प्रेमाश्रु और नृत्य–गीत

इस प्रकार लगभग दस दिनोंमें उनका ग्रन्थ सम्पूर्ण हुआ। बहुत–से स्थानोंपर पाठ करते समय उनके प्रेमाश्रु प्रवाहित होते। किसी–किसी समय वे पुलकित होकर ग्रन्थ रखकर यह प्रार्थना गान करते–करते नृत्य करने लगे—

'गौराङ्ग' बलिते हबे पुलक शरीर।
'हरि हरि' बलिते नयने बबे नीर॥

आर कबे निताईचाँदेर करुणा हइबे।
संसार–वासना मोर कबे तुच्छ हबे॥

विषय छाड़िया कबे शुद्ध हबे मन।
कबे हाम हेरब श्रीवृन्दावन॥

रूप-रघुनाथ पदे हइबे आकुति।
कबे हाम बुझव से युगल पीरिति॥

रूप-रघुनाथ पदे रहु मोर आश।
प्रार्थना करये सदा नरोत्तमदास॥

['गौराङ्ग' का नाम उच्चारण करनेपर कब मेरा शरीर पुलकित होगा। 'हरि हरि' कहनेसे कब मेरे नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होगी। कब श्रीनित्यान्द प्रभुकी मेरे ऊपर कृपा होगी। मेरा विषयोंके प्रति कब वैराग्य होगा? सांसारिक वासनाएँ कब दूर होंगी? मैं श्रीवृन्दावनधामका कब दर्शन करूँगा? रूप-रघुनाथके नामोच्चारणसे मेरा मन कब विह्वल होगा? मैं श्रीवृन्दावनके कुञ्जोंमें सम्पन्न होनेवाले उस युगल-विलासको कब समझ सकूँगा? श्रीरूप-रघुनाथके चरणोंकी ही मुझे सदैव आश है। नरोत्तमदास ठाकुर नित्य यही प्रार्थना करते हैं।]

बहुत-से वैष्णव नरेन बाबूके मधुर पाठका श्रवण करते थे। श्रीसनातन और श्रीरूप गोस्वामीकी शिक्षा एवं रायरामानन्दके साथ महाप्रभुका संवाद—ये सभी निगूढ़ तत्त्व पूर्ण कथाएँ हैं, इनके विषयमें अनेकों आलोचनाएँ होने लगीं। श्रीचैतन्यचरितामृतका दो-बार पाठ होनेके बाद श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु ग्रन्थका पाठ आरम्भ हुआ और बाबाजी महाराज (ग्रन्थमें वर्णित) अनेक विषयोंपर उपदेश देकर प्रसन्न हुए।

नरेन बाबू और आनन्द बाबूका श्रीनामाश्रय

एक दिन नरेन बाबू और आनन्द बाबू बाबाजीके चरणोंमें दण्डवत्-प्रणाम करके कहने लगे—"प्रभो! यदि कृपा करके श्रीश्रीहरिनाम प्रदान करें, तब हमलोग कृतार्थ होंगे।" बाबाजीने विलम्ब नहीं करते हुए उन्हें भक्तिके द्वारा आद्र देखकर हरिनाम-महामन्त्र

प्रदान किया। वे लोग तुलसीकी मालापर संख्यापूर्वक नामभजन करने लगे। एक दिन उन्होंने पूछा—"प्रभो! क्या हमलोग तिलक–माला धारण करें?" बाबाजीने कहा—"जिस प्रकारकी रुचि हो वैसा ही करो, मैं बाह्य विषयोंके सम्बन्धमें कोई विधान नहीं करता हूँ।"

वैष्णवोंके सङ्गमें दोनों बाबुओंका वैष्णव–वेश धारण

यद्यपि बाबाजीने बाहरी वेशके विषयमें अपनी उदासीनता प्रकट की, तथापि वैष्णव–संसर्गसे नरेन बाबू और आनन्द बाबूके मनमें वैष्णव–वेश धारण करनेकी स्पृहा जाग्रत हुई। दूसरे दिन प्रातः मल्लिक महाशयने नरेन बाबू और आनन्द बाबूको जब माला–तिलकसे विभूषित देखा तब वे मन–ही–मन सोचने लगे कि "कृष्ण क्या नहीं कर सकते हैं।"

उसी दिनसे आनन्द बाबू और नरेन बाबूकी दाड़ी–मूँछें दूर हुई, उनके विलायती जूते धरे रह गये। उन्होंने सम्पूर्ण रूपसे गृही वैष्णवोंका वेश धारण किया।

दोनों बाबुओंके हृदयमें जीवोंके प्रति दयाका उदय

सन्ध्याकालमें नरेन बाबू और आनन्द बाबू, नरेन बाबू द्वारा स्वरचित एक गीत गान कर रहे थे, जिसे श्रवणकर बाबाजीका हृदय प्रसन्नतासे पुलकित हो रहा था। वह गीत इस प्रकार है—

कबे वैष्णवेर दया आमा प्रति हबे।
आमार बान्धववर्ग कृष्णनाम लबे॥

शुष्क युक्तिवाद ह'ते हइबे उद्धार।
ब्रह्म छाडि 'कृष्णे मति हइबे सबार॥

सकलेर मुखे गुरु–कृष्ण–नाम शुनि'।
आनन्दे नाचिब आमि करे हरि ध्वनि॥

प्रभु गुरुदेव-पदे प्रार्थना आमार।
मम सङ्गीगने प्रभु करह उद्धार॥

[कब वैष्णवगण मुझपर दया करेंगे और कब मेरे बन्धु-बान्धव लोग कृष्णनाम ग्रहण करेंगे। कब उनका शुष्क युक्तिवाद दूर होगा। जिसके फलस्वरूप ब्रह्मको छोड़कर सभीकी बुद्धि श्रीकृष्णभक्तिमें नियुक्त होगी। कब सभीके मुखसे श्रीगुरु और कृष्णका नाम श्रवण करके हरिध्वनि करते हुए आनन्दसे नृत्य करूँगा। श्रीगुरुचरणोंमें मेरी यही प्रार्थना है। हे प्रभो! मेरे सङ्गी-साथियोंका उद्धार कीजिये।]

षष्ठ प्रभा समाप्त

सप्तम प्रभा

नरेन बाबूके द्वारा ब्राह्मचार्यको पत्र प्रेरण तथा कुछ प्रश्नोंकी जिज्ञासा

नरेन बाबूने गत रात्रिमें जिस सुदीर्घ पत्रको लिखा, उसे सुबह डाकघरमें भेज दिया। यह पत्र उन्होंने प्रधान ब्राह्माचार्यको लिखा था, जिसमें उन्होंने भक्तिके उत्कर्ष और युक्तिवादके धिक्कारका वर्णन किया। विशेष रूपसे उन्होंने अपने मनकी अवस्थाका अत्यन्त विस्तृत रूपमें उल्लेख किया था। उन्होंने आचार्य महाशयसे कुछ प्रश्नोंका भी उल्लेख किया था।

प्रेमकुञ्जमें हुए उत्सवमें सभीका योगदान

पत्र प्रेरित करनेके उपरान्त एक वैष्णवने आकर उन सभीको प्रेमकुञ्जके महोत्सवमें सम्मिलित होनेके लिए निमन्त्रण दिया। आनन्द बाबू, बाबाजी, मल्लिक महाशय तथा नरेन बाबूने उत्सवमें सम्मिलित होनेका निश्चय किया।

लगभग दस बजे सभी अपने नित्यकर्म, पूजा–आह्निक और भक्तिग्रन्थ पाठ समाप्तकर प्रेमकुञ्जके लिए चल पड़े। प्रेमकुञ्ज अत्यन्त पवित्र स्थल था। वहाँ माधवी लताके कुञ्जोंकी प्राचीरसे सुसज्जित प्राङ्गणमें श्रीनित्यानन्द और श्रीगौरचन्द्रके विग्रह विराजमान थे। असंख्य वैष्णवगण वहाँ कीर्त्तन कर रहे थे।

अतिथि वैष्णवगण धीरे–धीरे आने लगे। वे सभी प्राङ्गणमें बैठकर अनेक प्रकारके विषयोंपर चर्चा करने लगे।

प्रेमकुञ्जमें स्त्रियोंका प्रकोष्ठ तथा प्रेमभाविनीके द्वारा श्रीचैतन्यचरितामृतका पाठ

कुञ्जके एक प्रकोष्ठमें वैष्णवियोंके लिए स्थान निर्दिष्ट किया गया था। वहाँ प्रेमभाविनी नामकी कोई वैष्णवी श्रीचैतन्यचरितामृत

ग्रन्थका पाठ कर रही थीं। यद्यपि वैष्णवियोंका प्रकोष्ठ अलग था, फिर भी पुरुष–वैष्णवोंके गमनागमनके लिए कोई निषेध नहीं था।

नरेन बाबूने आनन्द बाबूसे कहा—"देखिये, ब्राह्म–समाजके आश्रम तथा वैष्णवोंके आश्रमोंमें कोई भेद नहीं दिखायी देता। ब्राह्मिकागण जिस प्रकार ग्रन्थपाठ एवं गीत गान करती हैं, उसी प्रकार यहाँकी वैष्णवीगण भी पाठ कर रही हैं। वैष्णवोंकी यह व्यवस्था नयी नहीं है, अतएव ब्राह्माचार्योंने वैष्णव–व्यवस्था देखकर ब्राह्माश्रमोंमें यह व्यवस्था की है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।"

नरेन बाबू और आनन्द बाबू धीरे–धीरे अग्रसर होते हुए स्त्री–प्रकोष्ठमें उपस्थित हुए। उन्होंने वहाँ देखा कि कृष्ण–दासियाँ धूलिपर बैठी हुई हैं। प्रेमभाविनी एक छोटे आसनपर उनके मध्यमें बैठकर ग्रन्थ पाठ कर रही थी। उनके परिधानमें श्वेत धोती थी, ललाटपर दीर्घ ऊर्द्ध्वपुण्ड्र तिलक और गलेमें सूक्ष्म तुलसी माला थी। समस्त अङ्गोंपर हरिनामावलिकी छाप थी और निकटमें एक पञ्चपात्र रखा था। उनके चारों ओरसे परिवेष्टित भक्तमण्डलीका वेश भी उसी प्रकारका था एवं उनके हाथोंमें हरिनामकी माला थी। सभी चातककी भाँति प्रेमभाविनीके मुखकी ओर देख रहे थे। प्रेमभाविनी मधुर स्वरमें इस प्रकार पाठ कर रही थीं—

कोन भाग्ये कोन जीवेर, **श्रद्धा** यदि हय।
तबे सेई जीव **साधुसङ्ग** करय॥

साधुसङ्ग हैते हय **श्रवण–कीर्त्तन**।
साधन–भक्त्ये हय **सर्वानर्थ निवर्त्तन**॥

अनर्थ निवृत्ति हैले भक्ति–**निष्ठा** हय।
निष्ठा–हइते श्रवणाद्ये **रुचि** उपजय॥

रुचि भक्ति हैते हय **आसक्ति** प्रचुर।
आसक्ति हइते चित्ते जन्मे **रतिर** अङ्कुर॥

सेइ रति गाढ़ हइले धरे **प्रेम**–नाम।
सेइ प्रेमा—**प्रयोजन** सर्वानन्द धाम॥

(चै॰ च॰ म॰ २३/९–१३)

[किसी भक्ति-उन्मुखी सुकृतिके बलसे किसी जीवकी यदि अनन्य-भक्तिके प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है, तब वह जीव शुद्धभक्त रूपी साधुओंका सङ्ग करता है। उस साधुसङ्गमें ही श्रवण और कीर्त्तन होता है। श्रवण और कीर्त्तन जितने परिमाणमें होता है, साधनभक्तिमें उसी परिमाणमें अनर्थोंकी निवृत्ति होती जाती है। श्रद्धाके उदय होनेसे ही श्रवण और कीर्त्तन द्वारा स्थूल-स्थूल अनर्थोंके निवृत्त होनेसे श्रद्धा ही अनन्य भक्तिके प्रति 'निष्ठा' के रूपमें उदित होती है, निष्ठा ही क्रमसे 'रुचि' हो जाती है। उस रुचिसे ही बादमें 'आसक्ति' उत्पन्न होती है। आसक्तिके निर्मल होनेपर कृष्ण प्रीतिके अंकुर-स्वरूप 'भाव' अथवा 'रति' होती है। वही रति गाढ़ होनेपर 'प्रेम' नाम प्राप्त करती है। वही प्रेम ही सर्वानन्द धामस्वरूप 'प्रयोजन-तत्त्व है। (श्रील भक्तिविनोदठाकुरकृत अमृतप्रवाह भाष्य चै॰ च॰ म॰ २३/९-१३)]

रति किसे कहते हैं? उसके स्थान और पात्रका निर्देश

रसभाविनी नामकी एक अल्पवयस्क श्रोताने जिज्ञासा की— "सखि! रति किसे कहते हैं?"

पाठकर्त्री प्रेमभाविनीने उत्तर दिया—"रति प्रेमका अङ्कुर है।"

रसभाविनीने मुस्कराते हुए पुनः पूछा—"रति कहाँ रहती है एवं रति किसके प्रति करनी चाहिये?"

प्रेमभाविनी एक पुरातन वैष्णवी थी। उन्होंने अनेक बार इस विषयकी आलोचना करके समस्त तत्त्वोंको ठीक-ठीक जाना है, रसभाविनीका प्रश्न श्रवणकर उनका चित्त द्रवित हो गया एवं प्रेमानन्दके कारण उनके दोनों नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगी और इसी अवस्थामें उन्होंने उत्तर दिया—

"सखि! तुम अपनी सांसारिक बुद्धिको पारमार्थिक विषयोंमें मत लगाना। लम्पट व्यक्तियोंके निकट जिस रतिका तुमने श्रवण किया है, यह वह रति नहीं है। जड़शरीरमें जो रति है, वह रति चितामें दग्ध होगी, तुम्हारे साथ नित्य रूपमें नहीं रहेगी। पृथ्वीपर जो

स्त्री–पुरुषका व्यवहार है, वह अति तुच्छ है; क्योंकि शरीरका सुख, शरीरके साथ नष्ट हो जाता है। जो जीव है—वही आत्मा है, उसका एक नित्य शरीर है। उस नित्य देहमें सभी जीव ही स्त्री एवं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र एकमात्र पुरुष हैं। जड़शरीरकी चेष्टाओंको नष्टकर नित्यदेहकी चेष्टाका वर्द्धन करो। जिस प्रकार जड़ीय स्त्रीदेहकी रति उत्कट भावसे पुरुषके प्रति ही धावित होती है, उसी प्रकार नित्य स्त्रीदेहकी अप्राकृत रतिको परमपुरुष श्रीकृष्णके प्रति लगाओ। विषयोंके प्रति चित्तकी जो लालसा है, उसे प्रकृत रति कहते हैं। अप्राकृत सिद्धदेहकी स्वाभाविक कृष्ण–लालसा ही जीवोंकी नित्य रति है। सखि! वह रति यदि अनुदित रहती, तब तुम क्यों अपना सम्भ्रम, मान, सभी कुछ परित्यागकर व्रजवास स्वीकार करती। रति एक स्वाभाविक वृत्ति है। इसका कोई कारण नहीं है। वह विषय देखनेमात्रसे उत्तेजित होती है। जैसे मैंने पहले भी कहा है कि यह रति प्रेमका बीज है। श्रवण–कीर्त्तनरूपी जलसे उस बीजको अङ्कुरित करो।”

इस प्रकार कहते–कहते प्रेमभाविनीमें भावका उदय हो आया। वे अस्थिर होकर “कहाँ प्राणवल्लभ!” कहते हुए गिर पड़ीं। सभी व्यस्त होकर उन्हें हरिनाम सुनाने लगे।

नरेन बाबूने आनन्द बाबूसे कहा—“देखो कितना विशुद्ध प्रेम है। जो मूर्ख व्यक्ति वैष्णवोंको स्त्री–लम्पट कहते हैं, वे अत्यन्त दुर्भागे हैं। वैष्णवप्रेम क्या वस्तु है, वे नहीं समझ सकते।”

प्रेमकुञ्जके उत्सवमें प्रसाद–सेवा

इधर एक शिंगा बज उठा, जिसे सुनकर सभी वैष्णवगण प्राङ्गणमें एकत्रित हो महोत्सवके प्रसादकी सेवाके लिए बैठ गये। गृहस्थ वैष्णवगण त्यागी वैष्णवोंके सम्मानके लिए अपेक्षा करने लगे। उसी समय श्रीगौर–नित्यानन्दके नामकी एक उच्च ध्वनि उठी और सभीने ‘प्रेम सुखे’—कहकर महाप्रसाद ग्रहण करना आरम्भ किया। शाकान्न भोजन करते समय एक वैष्णव थोड़े–से सागको मुखमें देकर रोदन

करते हुए कहने लगा—"आहा! कृष्णचन्द्रने कितने सुखसे इस शाकका भोजन किया है। मुझे और कोई भी द्रव्य इस शाकके समान मधुर नहीं लग रहा है।" सभी वैष्णव कृष्ण-प्रसाद भोजन करते समय गद्गद चित्तसे श्रीकृष्ण सुखकी चिन्ताकर प्रसाद सेवा करने लगे तथा प्रसाद सेवा समाप्त होनेपर प्रेमसे हरिध्वनि करते हुए उठ गये।

अधरामृतके माहात्म्यको श्रवण करके दोनों बाबुओं और मल्लिक महाशयके द्वारा अधरामृत ग्रहण

महोत्सव-कर्त्ताने वैष्णवोंके पात्रोंके अवशिष्टको एकत्रित किया। आनन्द बाबूने योगी बाबाजीसे इसका कारण पूछा। बाबाजीने कहा—"इस एकत्रित प्रसादका नाम अधरामृत है। जो व्यक्ति जाति-बुद्धि-करके इस अधरामृतके सेवनसे विमुख होते हैं, वे समबुद्धिरहित कपटी व्यक्ति हैं। वैष्णवोंमें उनकी गणना नहीं होती। जो लोग जाति-पाँतिका अभिमान करते हैं, उनके लिए महोत्सवका अधरामृत ही परीक्षाका स्थल है। विशेषतः आये हुए वैष्णवोंने सभी जातियोंको पवित्र किया है। उनका अधरामृत वैष्णवप्रेमके साथ सेवन करनेपर जातिका अभिमान दूर होता है। जाति-मद दूर होनेपर कृष्णभक्ति होती है।" आनन्द बाबू, मल्लिक महाशय और नरेन बाबूने अत्यधिक भक्तिपूर्वक अधरामृतका सेवन किया।

मानव जातिमें समता लानेमें एकमात्र वैष्णवधर्म ही समर्थ

नरेन बाबूने कहा—"मानवोंमें समताका प्रचार करनेके लिए वैष्णवधर्म ही एकमात्र विशुद्ध धर्म है। यद्यपि ब्राह्मगण समबुद्धिका अहङ्कार करते हैं, परन्तु उनके कार्यमें उदारता नहीं है। अब समझा कि धर्मके विचारसे सभी जीवोंको समान समझना आवश्यक है। जागतिक विचारसे आचार और जन्म क्रमसे कुछ तारतम्य बनाये रखना आर्यगणोंका अभिमत है। जब देखा जा रहा है कि जाति

केवल सांसारिक तारतम्य है, तब जातिके विचारसे जो दोष ब्राह्म–गण दिखाते हैं, वह केवल वैदेशिक भ्रममात्र है।”

आनन्द बाबू और मल्लिक महाशयने उक्त सिद्धान्तका अनुमोदन किया।

सभी वैष्णव प्रसाद–सेवा समाप्तकर ‘हरि बोल’ बोलते–बोलते अपने–अपने स्थानोंपर चले गये। उस कुञ्जकी अधिकारिनी एक वृद्धा वैष्णवी थीं। उन्होंने बहुत स्नेह प्रकाश करते हुए आनन्द बाबू, नरेन बाबू और मल्लिक महाशयको स्त्री–प्रकोष्ठमें ले जाकर बैठाया। उनके मातृवत् स्नेहको देखकर सभी मुग्ध हो गये। वृद्धा वैष्णवीने पूछा—“तुमलोगोंका निवासस्थान कहाँ है? लगता है कलकत्ता, क्योंकि तुम्हारी भाषा कलकत्ता जैसी है।”

तब मल्लिक महाशय, आनन्द बाबू और नरेन बाबूने अपना–अपना परिचय प्रदान किया।

प्रेमभाविनीके द्वारा अपना परिचय प्रदान

प्रेमभाविनीने नरेन बाबूका परिचय सुनकर आगे बढ़कर जिज्ञासा की—“क्या मुझे पहचान सकते हो?”

नरेन बाबूने कहा—“नहीं।”

प्रेमभाविनीने कहा—“अच्छा बताओ तो, तुम्हारी बुआ कहाँ है?”

नरेन बाबूने कहा—“जब मैं बहुत छोटा था, उस समय मेरी बुआ यात्राके लिए काशीधाम गयी थीं। परन्तु वहाँसे लौटकर नहीं आयीं। मुझे कुछ–कुछ उनकी आकृति याद है। वे मुझे चोर–डाकूकी कहानियाँ सुनाकर सुलाती थीं।”

प्रेमभाविनीने कहा—“मैं तुम्हारी वही बुआ हूँ। जिस समय मैं तुम्हें छोड़कर काशीधाम गयी थी, उस समय मुझे बड़ा ही कष्ट हुआ था। मैं कुछ दिनों तक काशीमें थी। किन्तु काशीका संसर्ग अच्छा नहीं देखकर मैं वृन्दावन आ गयी। आज बीस वर्ष हो गये। मैं इसी कुञ्जमें वास करती हूँ। यहाँ आनेके बाद वैष्णवधर्ममें मेरी मति हुई। सभी वैष्णव–ग्रन्थोंको पढ़कर और साधुओंके

उपदेशोंको श्रवणकर क्रमशः ऐकान्तिक रूपसे श्रीहरिका चरणाश्रय किया। यहाँ आनेके बाद मैंने न तो तुमलोगोंका कोई समाचार लिया और न ही कोई पत्र लिखा। क्योंकि यदि समाचार लूँ, तो बादमें पुनः कहीं फिरसे संसार-गर्तमें पतित न हो जाऊँ। इस आशङ्कासे अब तक निस्तब्ध थी। किन्तु तुम्हें देखनेके बाद मनमें न जाने कैसी प्रसन्नता हो रही है। तुम्हारे तिलक, माला आदिको देखकर मैं भी तुम्हें नहीं पहचान पायी। मेरे पितृकुलमें तो सभी शक्ति-मन्त्रोपासक हैं। अच्छा बताओ तो किस प्रकार तुमने ये वैष्णव-चिह्न धारण किये?"

नरेन बाबूने अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया। प्रेमभाविनी उसे सुनकर आनन्दसे गद्‌गद हो गयी और आगे कुछ न बोल सकीं। "हे नन्दतनय! हे गोपीजनवल्लभ! आप जिनके ऊपर कृपा करते हैं, उसे आप किस बहानेसे ग्रहण करते हैं, यह कौन बता सकता है?"—यह कहते-कहते प्रेमभाविनी मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पडीं। उनके सभी अङ्ग पुलकित दिखने लगे और शरीर काँपने लगा।

उस समय मातृस्नेह सहित नरेन बाबूने अपनी बुआको दोनों हाथोंमें लेकर ऊपर उठाया। आनन्द बाबू और मल्लिक महाशय यह देखकर किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये। उस समय रसभाविनी, कृष्ण-काङ्गालिनी, हरिरङ्गिनी आदि वैष्णवीगण मधुर स्वरसे कीर्त्तन करते-करते प्रेमभाविनीकी चरणधूलिको अपने सभी अङ्गोंमें लगाने लगीं। वृद्धा वैष्णवीने कहा—"प्रेमभाविनीका जीवन सार्थक है। आहा! जो प्रेम ब्रह्माके लिए भी दुर्लभ है, वह इसमें प्रदीप्त हो रहा है।"

कुछ देरके बाद प्रेमभाविनीको बाह्यज्ञान प्राप्त हुआ। पुनः आँखें खोलकर रोते हुए प्रेमभाविनी कहने लगीं—"नरेन! यदि तुम कुछ दिन यहाँ रुको, तो बीच-बीचमें मुझे दर्शन देना। अपने गुरुदेवके श्रीचरणोंमें तुम्हारी भक्ति दृढ़ हो। गुरु-कृपाके बिना कृष्ण-कृपा नहीं मिलती है। तुम जब अपने घर जाओगे, तो अपनी माताके लिए थोड़ी व्रजरज ले जाना।"

नरेन बाबूने कहा—"बुआ! यदि तुम घर जानेकी इच्छा करो, तो मैं विशेष यत्नपूर्वक तुम्हें ले जाऊँगा।"

प्रेमभाविनीने कहा—"बाबा! मैं समस्त विषयोंसे पूर्णतः उदासीन हो गयी हूँ। अच्छे भोजन, घर, वस्त्र और आत्मीय लोगोंके प्रति मेरी कोई स्पृहा नहीं है। ऐकान्तिक रूपसे श्रीकृष्णकी सेवा ही मेरी एकमात्र लालसा है। यदि तुमने भी वैष्णव–धर्मका आश्रय न लिया होता, तो तुम्हारे समीप भी मैं अपना परिचय नहीं प्रदान करती। कृष्णभक्तगण ही मेरे माता–पिता हैं। वे ही मेरे बन्धु और भ्राता हैं। श्रीकृष्ण ही मेरे एकमात्र पति हैं। श्रीकृष्णका संसार छोड़कर मैं अन्यत्र कहीं नहीं जाऊँगी। तुमलोग ठीक रहो और श्रीकृष्णभजन करो।"

प्रेमकुञ्जसे सभीका प्रस्थान तथा मार्गमें ग्वालबालकोंका वसन्तोत्सव दर्शन

उसी समय योगी बाबाजीने उनलोगोंको बुलवाया। मल्लिक महाशय, नरेन बाबू और आनन्द बाबू वृद्धा वैष्णवी और प्रेमभाविनीको दण्डवत्–प्रणामकर प्रकोष्ठसे बाहर आ गये।

बाबाजीने कहा—"दिन ढल रहा है, चलो, हमलोग अपने कुञ्जमें चलें।" यह कहकर चारों लोग वहाँसे चल दिये।

कुछ दूर जानेपर उन लोगोंने देखा—एक कदम्ब–कानन है। वहाँ कुछ व्रजबालक वृक्षके नीचे गोपवेशमें नृत्य कर रहे थे और नृत्य करते–करते वे वसन्त–रागमें मधुर स्वरसे निम्नलिखित पदका गान कर रहे थे—

अभिनव कुट्मल गुच्छ समुज्ज्वल,
कुञ्चित कुन्तल–भार।
प्रणयी–जने रत, चन्दन–सहकृत
चूर्णित वर–घन–सार॥१॥

जय जय सुन्दर नन्दकुमार।

सौरभ संकट, वृन्दावन-तट,
विहित-वसन्त-विहार ॥२॥

अधर-विराजित, मन्दतर स्मित,
लोचित निज-परिवार।
चटुल दृगञ्चल, रचित रसोच्चल,
राधा-मदन-विकार ॥३॥

भुवन-विमोहन, मञ्जुल नर्त्तन,
गति वल्गित-मणिहार।
निज-वल्लव-जन सुहृत-सनातन
चित्त विहरदवतार ॥४॥

[आपकी झुकी हुयी घुँघराली अलकावली उसमें संयुक्त नव पुष्प-कलिकाओंके गुच्छोंकी शोभाको भी समुज्ज्वल करती है तथा आपके अङ्गोंमें प्रणयीजनोंके द्वारा फैंका गया चन्दन मिश्रित गुलाल शोभायामान हो रहा है॥१॥

हे परमसुन्दर नन्दकुमार! आपके द्वारा पुष्पोंके सौरभसे परिपूर्ण वृन्दावनमें (यमुनाके तटप्रदेशमें) किये गये वसन्त विहारकी जय हो!॥२॥

आपके अधरोंपर विराजित मन्द-मन्द मुस्कान आपके निज परिजनोंको लुब्ध करती है तथा आपके अति मनोहर परम चञ्चल कटाक्षपात रसको वर्द्धनकर अनुरागिनी श्रीराधिकामें मदन (प्रेम) विकारको उत्पन्न करते हैं॥३॥

आपकी भुवनमोहिनी मनोहर नृत्यगति आपके कण्ठमें विराजित मणियोंके हारको चञ्चल कर देती है। आप अपने प्रियजनोंके नित्य सुहृद हैं और उनके चित्तमें सदैव अवतरित होकर विहार करते हैं। (अथवा आप श्रील सनातन गोस्वामीके सुहृद होकर उनके चित्तमें सैदव विहार करते हैं॥४॥

(श्रीरूप गोस्वामीकृत स्तवावलीमें गीतावलीके अन्तर्गत तृतीय गीत)]

थोड़ा आगे बढ़कर आनन्द बाबूने पूछा—“हे बालको! तुमलोग क्या कर रहे हो?”

उन बालकोंमेंसे एक बालकने आगे बढ़कर कहा—“हमलोग प्राणधन श्रीकृष्णके वसन्तोत्सवमें मत्त है।”

आनन्द बाबूने पूछा—“तुमलोग कुछ पैसे लोगे?”

बालकोंने उत्तर दिया—“श्रीकृष्णके वन–विहारमें पैसे नहीं लगते। किसलय (पत्र–पुष्प), वेणु, शृङ्ग, वेत्र, गोधन और प्रणयी जन ही कृष्णलीलाके उपकरण हैं। माधुर्य ही कृष्णलीलाका एकमात्र भाव है। हम ऐश्वर्य नहीं जानते। मैं, सुबल, यह श्रीदाम, यह बलदेव, यह वेत्र, यह शृङ्ग, यह कदम्ब–कानन—हम सभी श्रीकृष्णके प्रणयी जन हैं। हमें क्या अभाव है? आपलोग प्रस्थान करें, हमारी सेवाका समय बीता जा रहा है।”

व्रजभावका अनुभव करते–करते सभीका योगी बाबाजीके कुञ्जमें प्रवेश

आनन्द बाबू और नरेन बाबू उस स्थानसे बाबाजीके पास आये और उन्होंने बाबाजीसे कुछ जिज्ञासा की। जिसका उत्तर देते हुए बाबाजीने कहा—“व्रजके भावके विषयमें क्यों जिज्ञासा कर रहे हो? यहाँ सभी भावुक हैं और समस्त वस्तुएँ भावमय हैं। बालक इत्यादि तो चैतन्यविशिष्ट हैं। देखो, वृक्षसमूह भी कृष्णलीलामें मुग्ध हो रहे हैं। पक्षीसमूह बीच–बीचमें ‘राधे–राधे’ ‘कृष्ण–कृष्ण’ उच्चारण कर रहे हैं। आहा! तार्किक लोगोंके लिए वृन्दावन एक अद्भुत दर्शनीय स्थान है।” यह कहते–कहते बाबाजीका भावोदय होने लगा। “हा राधे! हा वृन्दावनेश्वरी!” कहकर बाबाजी स्पन्दनहीन (अचेतन) हो गये।

बाबाजीको उस अवस्थामें देखकर आनन्द बाबू और नरेन बाबू मत्त–भावसे “हरि–हरि” कहते हुए नृत्य करने लगे।

आनन्दबाबूने कहा—“क्या आश्चर्य है!—ब्राह्माचार्य महाशय इन व्रजबालकोंका पौत्तलिक धर्मके गर्त्तसे उद्धार करना चाहते हैं! यदि

मैं उन्हें पत्र लिखता तो कहता वैद्यराज! पहले आप अपने रोगको शान्त करें।"

थोड़ी देरके बाद सभीने परमानन्दमें नृत्य करते-करते योगी बाबाजीके कुञ्जमें प्रवेश किया।

तर्कको सम्पूर्ण रूपसे तिलाञ्जलि देकर वैष्णवसङ्गमें दोनों बाबुओंके द्वारा भक्तिके अङ्गोंका पालन

प्रतिदिन भक्तिशास्त्र पाठ, तत्त्वविषयका विचार, हरिगुण-कीर्त्तन, तीर्थ-परिभ्रमण, महाप्रसाद-सेवन, श्रीमूर्त्ति-दर्शन आदि कार्य होने लगे। अब उन बाबुओंको वैष्णवसङ्गके अतिरिक्त और कुछ अच्छा नहीं लगता। यदि कोई उनसे तर्क करना चाहता है, तो वे कहते हैं कि अब तर्कका समय समाप्त हो चुका है, ब्राह्मभ्रातागण साकार-निराकार, धर्म-अधर्म आदिको लेकर तर्क करें, हम तो हरिरसके पानमें मुग्ध रहेंगे। जहाँ अविद्या ही परम सुख है, वहाँ विद्याके मुखपर झाड़ू मारता हूँ।

इस प्रकार कई सप्ताह बीत गये।

सप्तम प्रभा समाप्त

अष्टम प्रभा

नरेन बाबूके प्रश्नके उत्तरमें ब्राह्माचार्यका पत्र

एक दिन प्रातःकालमें नरेन बाबू आँवलेके वृक्षके नीचे बैठे एक विस्तृत पत्र पढ़ रहे थे। आनन्द बाबू, मल्लिक महाशय तथा कुछ और वैष्णव भी उस स्थानपर आकर उपस्थित हुए।

आनन्द बाबूने पूछा—"नरेन बाबू! यह पत्र किसने लिखा है?"

नरेन बाबूने मुँह बनाकर कहा—"ब्राह्माचार्य महोदयका प्रत्युत्तर पत्र आज ही मैंने पाया है।" आनन्द बाबूकी प्रार्थनाके अनुसार नरेन बाबू पत्र पढ़ने लगे—

भ्रातः! तुम्हारा पत्र पढ़कर अतिशय दुःखित हुआ। न जाने किसके कुतर्कके जालमें पड़कर तुम इतने कष्टसे उपार्जित ज्ञानरत्नको जलाञ्जलि देनेके लिए तत्पर हो? क्या तुम्हें यह स्मरण नहीं है कि कितने परिश्रमसे मैंने तुम्हारे कुसंस्कारोंको दूर किया था? पुनः किन कारणोंसे तुम उन्हीं कुसंस्कारोंको वरण कर रहे हो? ब्राह्मप्रधान प्रभु यीशुने कहा है कि धर्मसंस्कारका कार्य सभी कार्योंसे कठिन है। कुसंस्कार भी शीघ्र ही लोगोंका परित्याग नहीं करता है, क्योंकि मानव-जाति सर्वदा ही भ्रम-परवश है। प्रभु यीशुको भी भूत-विश्वासने छोड़ा नहीं। अतएव तुमने जितनी भी शिक्षा क्यों न ग्रहण की हो, फिर भी तुम्हारा भ्रम दूर नहीं हुआ है। यद्यपि तुम्हारी मनकी गति परिवर्त्तित हुई है, तथापि मेरा कर्त्तव्य है कि तुम्हें सुपथपर लानेकी चेष्टा करूँ। अतएव एक-एक करके तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर दे रहा हूँ—विशेष विवेचनापूर्वक अर्थको समझनेकी चेष्टा करना।

पत्रमें उल्लिखित—भक्तिवृत्तिके सम्बन्धमें ब्राह्मवादियोंका मत

तुमने लिखा कि मानवमें जो प्रेमवृत्ति है, वही भक्ति है। भक्ति नामकी एक और वृत्ति है, तुम उसे स्वीकार नहीं करते हो। मेरी विवेचनाके अनुसार भक्ति एक स्वतन्त्र वृत्ति है। सभी मानव नितान्त विषयके अधीन हैं। अतएव उस वृत्तिकी व्याख्या नहीं हो सकती है। जिस समय हम परमेश्वरको पिता कहकर सम्बोधन करते हैं, तब बाह्यतः पितृभक्तिरूपी वृत्ति कार्य करती है। अन्तःकरणमें उस भूमा पुरुषके प्रति कोई अनिर्वचनीय सम्बन्धका लक्षण दिखता है। जिस समय उन्हें सखा कहते हैं, उस समय सामान्य सख्यरसका उदय होता है, किन्तु उसके अन्दर एक परमपुरुषगत सम्भ्रम रहता है। वास्तविक बात तो यह है कि, भक्तिवृत्तिका परिचय नहीं है। जब हमारा उद्धार होगा, तब हम उसे पहचान सकेंगे।

ब्राह्मभावमें परतत्त्वके सौन्दर्यको अस्वीकार

तुमने लिखा है कि ब्राह्म लोग अनेक समय परमेश्वरके सौन्दर्यका उल्लेख करते हैं। यदि उनका स्वरूप नहीं है, तो सौन्दर्य कहाँ रहता है? नरेन! क्या यह भी कोई युक्ति है? बहाना बनाकर कृष्णमूर्त्तिमें विश्वास करनेका मार्ग बना रहे हो! हमलोग जिस सौन्दर्यका उल्लेख करते हैं, वह केवल भावगत–मुग्धतामात्र है। (तुमने लिखा है कि) भावनेत्रसे उस सौन्दर्यको देखा जाता है, किन्तु वास्तवमें भूमा पुरुषका सौन्दर्य किस प्रकार सम्भव है?

निराकारवादमें भावकी अपेक्षा युक्तिका प्राधान्य

तुमने और भी लिखा है कि भावको उन्नत करनेके लिए युक्तिको विदायी देनी होती है। यह तो बेकारकी बात है। मानव युक्तिके बलपर ही अन्यान्य जन्तुओंसे श्रेष्ठ हुआ है। यदि युक्तिको विदायी दे दी जाये तो पुनः क्षुद्र जन्तुके साथ एकता हो जाती है। भाव उतना ही बढ़े, जब तक युक्तिके साथ उसका विरोध नहीं हो।

जहाँ युक्तिके साथ उसका विरोध हो, वहाँ भावको पीड़ा समझना चाहिये। भक्ति करनेके समय सर्वदा युक्तिका आश्रय लेना चाहिये। परमेश्वरको भावार्पण करना ही चरम कार्य नहीं है। संसारमें सन्तान आदि उत्पन्नकर दूसरोंके प्रति कर्त्तव्य-साधन करना ही परमेश्वरके प्रिय कार्यका साधन करना है। वैरागी होकर भावाश्रय करनेसे अवश्य ही अधःपतन होगा। थियोडोर पार्करकी पुस्तक विशेष यत्नके साथ पढ़कर इन चीजोंपर विचार करना।

ब्राह्म-मतमें निराकार एकेश्वर वादिता ही भक्तिवाद

तुमने कहा है कि ब्राह्मधर्म—युक्तिवाद है। यह ठीक नहीं है। तुम तो जानते हो कि विलायतमें एकेश्वरवाद धर्म दो प्रकारका है—Deist अर्थात् युक्तिवादी और theist परमेश्वरमें भक्तिवादी। युक्तिवादियोंको rationalist कहा जाता है। वे परमेश्वरको स्वीकार करते हैं, किन्तु उपासनाको स्वीकार नहीं करते हैं। किन्तु भक्तिवादी लोग उपासना करते हैं। ब्राह्मलोग उन्हें भ्रान्त बतलाते हैं। मुसलमान और ईसाई-धर्मको एकेश्वरवाद नहीं कहा जाता है। ईसाई लोग परमेश्वर, यीशु और धर्मात्मा—तीनोंको ही एक मानते हैं। इस स्थितिमें वे लोग किस प्रकार शुद्ध एकेश्वरवादी हो सकते हैं? मुसलमानोंमें यीशु या धर्मात्मा तो नहीं हैं, किन्तु उनका जो शैतान है, वह भी परमेश्वरके समकक्ष है। विशेषतः बहुत लोग मुहम्मदको देवताके रूपमें स्वीकार करते हैं। वास्तवमें वे एकेश्वरवादी नहीं हैं। एकेश्वरवादियोंने कोई सम्प्रदाय नहीं बनाया। वे तो ग्रन्थ लेखक हैं। एकेश्वर ब्राह्मगणने ही केवल एकेश्वरवादी सम्प्रदाय बनाया है। ऐसे अपूर्व सम्प्रदायको छोड़कर किस कारणसे तुमलोग पौत्तलिकके गड्ढेमें प्रवेश कर रहे हो?—मैं नहीं कह सकता। ब्राह्मधर्मको युक्तिवादी कहनेसे फिर भक्तिवादी कौन हो सकता है? ब्राह्मधर्ममें भाव स्वीकार्य है, किन्तु भावको सीमाविशिष्ट नहीं करनेसे वह क्रमशः युक्तिविरुद्ध हो जाता है।

नरेन बाबूको नौकरीका प्रलोभन

नरेन! तुम भावुकोंका सङ्ग परित्यागकर शीघ्र कलकत्ता आ जाओ। यहाँ फॉरेस्ट–ऑफिसमें एक पद रिक्त है। मैंने साहबसे अनुरोध किया था और वे तुम्हें यह कार्य देनेके लिए तैयार हैं। यदि एक सप्ताहके अन्दर नहीं आओगे तो पद नहीं मिल पायेगा।

तुम्हारा हृदयभ्राता–
...... श्री ......

वहाँ चार–पाँच बार ब्राह्माचार्यका वह पत्र पढ़ा गया। आनन्द बाबू और नरेन बाबूने विशेष रूपसे उल्लिखित विषयोंकी आलोचना की। बादमें यह तय हुआ कि ब्राह्माचार्यकी सभी बातें अकर्मण्य हैं।

योगी बाबाजीके द्वारा ब्राह्म–मतकी भ्रान्तिका प्रदर्शन तथा सभीका पण्डित बाबाजीकी गुफाकी ओर प्रस्थान

उनलोगोंने जब बाबाजीसे इस विषयमें पूछा, तब बाबाजीने कहा—"जीवकी भक्तिवृत्ति प्रेमवृत्तिसे भिन्न नहीं है। आत्माका धर्म ही है—राग (प्रेम)। वही राग जब परमेश्वरको अर्पित होता है, तो उसे भक्ति कहते हैं। किन्तु जड़ीय विषयमें अर्पित होनेपर विषयासक्ति होती है। वृत्ति दो नहीं है। तुमलोगोंने भक्तिरसामृतसिन्धु ग्रन्थमें जो पढ़ा है, वही सत्य है। यदि कोई संशय हो, तो एकबार पण्डित बाबाजीसे जिज्ञासाकर सन्देहको दूर कर लो।"

ब्राह्माचार्यने और जो भी बातें लिखी हैं, वे सभी स्पष्टतः सम्प्रदाय पक्षपातमात्र है—नरेन बाबूने स्वयं ही इसे स्थिर किया है।

उस दिन सन्ध्या होनेके पहले ही नरेन बाबू, आनन्द बाबू, मल्लिक महाशय और बाबाजी सभी एकसाथ पण्डित बाबाजीके निकट गये।

पण्डित बाबाजीके मण्डपमें प्रायः पचास साधु–वैष्णव बैठे हुए थे। उनमें हरिदास और प्रेमदास पण्डित बाबाजीके निकट ही थे। योगी बाबाजी और उनके साथियोंको देखकर सभीने आनन्द ध्वनि

की तथा योगी बाबाजीने कहा—"आनेकी आज्ञा हो।" ये लोग भी वैष्णवोंको दण्डवत्-प्रणामकर वहाँ अपनी इच्छानुसार जहाँ बैठना चाहते थे, बैठ गये।

प्रेमदासने योगी बाबाजीसे पूछा—"बाबाजी! मैं देख रहा हूँ कि आपके सङ्गी लोगोंका वेष बदल गया है।"

योगी बाबाजीने कहा—"हाँ, श्रीकृष्णने इनलोगोंको सम्पूर्ण रूपसे अङ्गीकार किया है। आप सभी लोग आशीर्वाद करें, जिससे इनलोगोंका कृष्णप्रेम समृद्ध हो।"

सभी वैष्णवोंने एकसाथ कहा—"अवश्य होगा। आपकी कृपा होनेसे क्या नहीं हो सकता?"

पण्डित बाबाजीके द्वारा रसतत्त्वकी आलोचना करते समय सर्वशास्त्रसार श्रीमद्भागवत रसका पान करनेके लिए उपदेश

जब सभी लोग सुखपूर्वक बैठ गये, तो योगी बाबाजीने विनयपूर्वक पण्डित बाबाजीसे कहा—"बाबाजी! ये लोग कृष्णभक्त हो गये हैं और इन्होंने तर्कको बिल्कुल ही जलाञ्जलि दे दी है। मैं अवश्य ही समझ गया हूँ कि अब इन लोगोंने रसतत्त्वका अधिकार प्राप्त कर लिया है। आज ये आपके चरणोंमें उपस्थित होकर विस्तृत रूपसे शिक्षा पानेकी आशा कर रहे हैं।"

रसतत्त्वका नाम सुननेमात्रसे ही पण्डित बाबाजी रसपूर्ण हो गये और उपस्थित सभी वैष्णवोंसे उन्होंने अनुमति ग्रहण की। बादमें श्रीगौराङ्गके चरणोंमें साष्टाङ्ग दण्डवत्-प्रणामकर उन्होंने श्रीमद्भागवत-शास्त्रको सम्मुख रखकर तत्त्वकथा आरम्भ की—

निगम-कल्पतरोर्गलितं फलं,
शुकमुखादमृत-द्रव-संयुतम् ।
पिबत भागवतं रसमालयं,
मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः॥

(श्रीमद्भा॰ १/१/३)

श्रीमद्भागवतके रचयिता कहते हैं—"समस्त निगमशास्त्र कल्पतरु-स्वरूप हैं। उसी कल्पतरुका फल है—श्रीमद्भागवत-शास्त्र। यह फल पका हुआ है। जिस प्रकार पके हुए फल शुक पक्षीके द्वारा नीचे गिरा दिये जाते हैं, उसी प्रकार भागवतरूप यह पक्व फल भी श्रीशुकदेव गोस्वामीके द्वारा गोलोक वृन्दावनसे पृथ्वीपर लाया गया है। अन्यान्य फलोंके साथ इसका यही तारतम्य है कि दूसरे फलोंमें छिलका तथा बीज होता है, किन्तु इस फलमें ये सब नहीं हैं, क्योंकि यह सम्पूर्ण रसमात्र है। जड़से अतीत ब्रह्मचिन्ता द्वारा वैकुण्ठतत्त्वमें लय होता है। लय ही शुष्क ब्रह्मचिन्ताकी चरमसीमा है, किन्तु 'रसो वै सः' इत्यादि श्रुति-प्रतिपाद्य परम रसमय श्रीकृष्णचिन्ता द्वारा जो लय (मूर्च्छित होने) का भाव उदित होता है, वही भावुक-जीवनका प्रारम्भ है। अतएव हे भावुकगण! वैकुण्ठ-भावरूप लय लाभकर रसतत्त्वकी सेवा करते हुए इस भागवत-शास्त्ररूप रसफलका निरन्तर पान करते रहें।

वास्तवमें 'रस' किसे कहते हैं?

"हे रसिक वैष्णवगण! रस ही परमार्थ है। जगत्के विषयी लोग जिसे रस कहते हैं, हमलोग उसे 'रस' नहीं कहते हैं। जरा देखें, आलङ्कारिक पण्डितगण जैसे वृक्षके रसको 'रस' नहीं कहते, क्योंकि वे सामान्य वृक्ष रससे उत्कृष्ट किसी मानसिक रसकी व्याख्या करते हैं, वैसे ही हमलोग भी जड़देह या जड़ीय मनसे सम्बन्धित रसको रस नहीं कहते हैं। बल्कि आत्मामें जो रस स्वभाव द्वारा अनुयन्त्रित है, उसे ही हमलोग रस कहते हैं। तुलनाके स्थलमें हमलोग कभी खजूर या गन्नेके रस तथा इनसे उत्पन्न गुड़, शर्करा, मिसरी इत्यादिका उल्लेख करते हैं अथवा कभी प्राकृत नायक-नायिका घटित रसोंका वर्णन करते हैं, किन्तु हमलोग आत्मासमूह और समस्त आत्माओंके आत्मा जो श्रीकृष्ण हैं, उनमें जो रस है, उसीको रसका एकमात्र विषय समझकर उद्देश्य करते हैं।

“विशुद्ध अवस्थामें मानव शुद्ध आत्मस्वरूप हैं, उस अवस्थामें मन नहीं है, जड़ीय शरीर भी नहीं हैं, जो मुक्तिका अन्वेषण करते हैं, वे इसी अवस्थाका ही अन्वेषण करते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। जीवसमूह इसमें अवस्थित होकर परब्रह्मके साथ प्रकृतिसे अतीत जिस धाममें वास करते हैं, उसी धामका नाम है—वैकुण्ठ। जिस स्वरूपमें जीवगण इसमें अवस्थित होते हैं, वह स्वरूप प्राकृत द्रव्यसे अतीत विशुद्ध-चिन्मय है। उस अवस्थामें जीवका जो ब्रह्म-सहवासरूप अमिश्र सुखभाव है, वही ‘रस’ है।

विषयरस भक्तिरसका प्रतिफलित भावमात्र है, किन्तु पृथक् नहीं

“जड़बद्ध होकर जीव अपने वैकुण्ठस्वरूपसे विच्छिन्न नहीं होता है। बद्धावस्थामें वैकुण्ठस्वरूप जड़सङ्गके प्रभावसे जड़-धर्मकी ग्लानिसे संयुक्त होकर मनके रूपमें परिणत हुआ है। तथापि आत्मधर्मका विच्छेद नहीं हुआ है। अभी जड़ीय भावमें आत्माकी श्रद्धा, आशा और सुख है। स्वरूपकी ऐसी अवस्था होनेपर, आत्मधर्ममें जो रस है, वह भी सुख-दुःखरूप विषय-सम्भोगादिके रूपमें विकृत हो गया है। विकार किसे कहते हैं? शुद्ध धर्मकी विकृतिका नाम विकार है। अतएव विकारमें भी शुद्ध धर्म अनुभूत होता है। विषय-सम्भोग आदि कार्योंमें जिस रसकी अनुभूति होती है, वह भी आत्मरसकी विकृति है। आत्मामें जो रस था, वह अल्प परिमाणमें आत्म-प्रत्यय (विश्वास) द्वारा अनुभूत होता है, यद्यपि विकृत-रसको आत्म-रससे सहज बुद्धि द्वारा अनायास ही अलग किया जा सकता है, तथापि नामोच्चारणके समय ही भिन्न रूपमें समझनेके लिए ही आत्मगत रसको भक्तिरस कहा गया है। ‘भक्तिवृत्ति’ और ‘विषय-प्रेम-वृत्ति’ परस्पर स्वाधीन तत्त्व नहीं हैं। दूसरी वृत्ति पहली वृत्तिका प्रतिफलित भावमात्र है। युक्तिवादी लोग थोड़े परिमाणमें आत्मरसकी उपलब्धिकर भ्रमवशतः ही ‘भक्तिवृत्ति’ और ‘विषय-प्रेम-वृत्ति’ को पृथक् तत्त्व समझते हैं। जिन्होंने थोड़े

परिमाणमें भी भक्तिरसका परिचय पाया है एवं दोनों वृत्तियोंके स्वरूपकी आलोचना की है, वे कभी ऐसा विश्वास नहीं करते।

भाव और रसका पार्थक्य—भाव समष्टिका नाम ही रस

"परब्रह्म–रस अखण्ड होनेपर भी अचिन्त्य–शक्तिके प्रभावसे विचित्र है। भाव और रसमें भिन्नता यही है कि अनेक भाव जब एकत्रित होते हैं तो रसका उदय होता है। इसी प्रकार भावुक और रसिक शब्दका भी भिन्न–भिन्न अर्थ जानना चाहिये। भाव एक छविकी भाँति है और रस एक चित्रपटके समान है, जिसमें अनेक छवियाँ रहती हैं। जो कुछेक भाव एकत्रित होकर रसको उदित कराते हैं, उन सबका विचार नहीं करनेसे 'रस' शब्दकी व्याख्या नहीं हो सकती है।

"भाव–समष्टि मिलित होकर रसता लाभ करता है। उस भावसमूहमें जो भाव प्रधान रूपसे कार्य करता है, उसका नाम स्थायीभाव है। अन्य तीन भावोंमेंसे एकका नाम विभाव, एकका अनुभाव तथा अन्य एकका नाम सञ्चारीभाव है। स्थायीभाव ही अन्य तीन भावोंकी सहायतासे स्वाद्यत्व लाभकर रस हो पड़ता है।

"रसतत्त्व एक समुद्रकी भाँति है। मैं उसके एक बूँदका एक कण भी आस्वादन नहीं कर सका। मैं अत्यन्त सामान्य व्यक्ति हूँ। मेरी ऐसी क्षमता नहीं हैं कि रसके विषयमें आपलोगोंको शिक्षा दे सकूँ। प्रभु गौराङ्गदेवने जो शिक्षा दी है, उसे ही मैं तोतेके समान बोल रहा हूँ।

पार्थिव, स्वर्गीय और वैकुण्ठके भेदसे रसकी तीन प्रकारकी व्याख्या

"एक अन्य प्रकारकी व्याख्याके द्वारा मैं रसतत्त्व समझानेकी चेष्टा कर रहा हूँ। रस तीन प्रकारका है—वैकुण्ठ–रस, स्वर्गीय–रस एवं पार्थिव–रस। मीठा इत्यादिके भेदसे पार्थिव–रस छः प्रकारका है। यह पार्थिव–रस, ईख, खजूर, आदिमें पाया जाता है। स्वर्गीय–रस

मानसिक भावगृहमें दृष्ट होता है। उसमें ही जीव और जीवके बीच नायक–नायिकात्व स्थापित होकर रसोद्भावित होता है। वैकुण्ठ–रस केवल आत्मामें ही लक्षित होता है। बद्धजीवमें यह रस उदित होनेपर भी आत्माके अतिरिक्त अन्य कहीं भी इसकी स्थिति नहीं है। आत्मामें इसकी प्रचुरता होनेपर मन तक उसकी लहरें आती हैं। ये लहरें मनको अतिक्रमकर (पारकर) साधकके शरीरमें व्याप्त हो जाती है। उसी समय परस्पर रसका परिचय प्राप्त होता है। वैकुण्ठ–रसमें श्रीकृष्णचन्द्र ही एकमात्र नायक हैं। एक वैकुण्ठ–रस ही प्रतिफलित होकर स्वर्गीय मानस–रस–रूपमें परिणत हुआ है। पुनः प्रतिफलित होकर पार्थिव–रस हुआ है। अतएव तीनों ही रसोंका विधान, प्रक्रिया और स्वरूप एक ही प्रकारका है। वैकुण्ठ–रस ही वैष्णवोंका जीवन है। वैकुण्ठ रसोद्देश नहीं होनेके कारण अन्य दोनों प्रकारके रस नितान्त घृणित और अश्रद्धेय हैं। नीच प्रवृत्त–परवश लोग ही स्वर्गीय और पार्थिव रसके प्रति मुग्ध होते हैं। वैष्णवगण अत्यधिक सतर्कतापूर्वक स्वर्गीय और पार्थिव–रसको परित्यागकर वैकुण्ठ–रसकी आलोचना करते हैं।

पार्थिव–रस

"'रस' कहते ही उसमें स्थायीभाव, विभाव, अनुभाव और सञ्चारीभाव रूप चार भाव लक्षित होते हैं। अब आप पार्थिव–रसका उदाहरण देखें। मिष्ट–रस (मीठापन) के आविर्भावके समय कई एक भावोंकी स्थिति है। सर्वप्रथम मिष्ट–रसके प्रति रति ही उसमें स्थायीभाव है। उस रतिका 'पात्र' ही उसका विभाव है। पात्र दो प्रकारका होता है—आश्रय और विषय। मिठाईके प्रति जिसकी रति है, वही अर्थात् मनुष्यकी जिह्वा ही उस रतिका आश्रय है। वह रति जिसके प्रति धावित हो रही है, वही अर्थात् गुड़ (मिठाई) ही उसका विषय है। विषयमें जो प्रलोभन–गुण हैं, वे ही रतिके उद्दीपन हैं। मिठाईके प्रति जब रतिका उदय होता है, उस समय उसके जो 'लक्षण' प्रकाशित होते हैं, वे सभी इस रतिके अनुभाव

हैं। इसी रतिको पुष्ट करनेके लिए 'हर्ष' आदि और जो–जो भाव होते हैं, वे ही सञ्चारीभाव हैं। इन समस्त भावोंकी सहायतासे जब मिष्टरति स्वाद्यता लाभ करती है, तभी वह मिष्टरस होता है।

स्वर्गीय–रस वैकुण्ठ–रसकी अपेक्षा हेय

"स्वर्गीय–रसका भी उदाहरण देखें। पार्थिव–रसकी अपेक्षा स्वर्गीय–रस अधिकतर विस्तीर्ण और उदार है, क्योंकि इसमें जड़की अपेक्षा सूक्ष्म तत्त्व है। 'नायक–नायिका' की रति देखें, 'पिता–पुत्र' की रति देखें, 'प्रभु–दास' की रति देखें अथवा 'सखाओं' की रति देखें, सब रतिमें ही रति स्थायीभाव है और अन्यान्य तीनों भावोंकी सहायतासे रस बन जाती है।

"जिस प्रकार स्वर्गीय–रस पार्थिव–रससे विस्तीर्ण और उदार है, उसी प्रकार स्वर्गीय–रसकी अपेक्षा वैकुण्ठ–रस अनन्त गुण विस्तीर्ण और उदार है। पार्थिव–रसमें केवल एक सम्बन्ध है—भोग्य और भोक्तृका सम्बन्ध। स्वर्गीय–रसमें चार सम्बन्ध हैं—दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर। किन्तु स्वर्गीय–रसमें रसकी अन्याय गति[१] है एवं अनुपयुक्त विषय है। इसीलिए स्वर्गीय–रस नित्य नहीं हो सकता है। वैकुण्ठ–रसमें सम्बन्ध पाँच हैं—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर। दोनों रस ही आत्म–सम्बन्धी और पार्थिव–सम्बन्धी हैं। अतएव दोनों ही रसोंका सम्बन्ध–भाव एक प्रकारका है। दोनों रसोंमें भिन्नता केवल यह है कि वैकुण्ठ–रसके समस्त उपकरण ही नित्य और अखण्ड परब्रह्म–भावित हैं। अतएव इस रसकी नित्य स्थिति लक्षित हुई। स्वर्गीय–रसके समस्त उपकरण अनित्य हैं, अतएव यह रस सिद्ध नहीं है। इसलिए यह अल्पकालस्थायी, लज्जाकर और तुच्छ फलयुक्त है।

. . . .

[१] स्वाभाविक रूपसे रतिको जिस ओर जाना चाहिये, वह रति यदि भोगोन्मुखताके कारण उस ओर न जाकर विपरीत दिशामें जाती है, तो उसकी गतिको अन्याय गति कहा जाता है।

वैकुण्ठ–रस युक्तिके अधीन नहीं

"मैंने साधारणतः तीन प्रकारके रसोंका सम्बन्ध दिखाया। वैकुण्ठ–रसके सम्बन्धमें जो कह सकता हूँ, अभी एकमात्र वही कहूँगा।

"हम समय–समयपर युक्तिवादियोंके निकट यह सुनते हैं कि वैकुण्ठ–रस वास्तविक नहीं, बल्कि काल्पनिक है। इसमें युक्तिकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि युक्ति वैकुण्ठतत्त्वमें प्रवेश नहीं कर सकती। जिन्होंने वैकुण्ठरसका आस्वादन नहीं किया है, उन्हें यह तत्त्व कभी नहीं समझाया जा सकता। अतएव जिनका सौभाग्य उदित हुआ है, उन्हें युक्तिवादको इन विषयोंमें स्थान नहीं देना चाहिये। आपलोग साधुसङ्गमें रसतत्त्वका आस्वादनकर अनुभव प्राप्त करें।

"आज अधिक रात हो गयी है। कल पुनः यथासाध्य इस विषयमें यत्न करूँगा। आपलोग वैष्णव हैं, अतएव इन समस्त विषयोंको जानते हैं। आपलोगोंने मुझे अनुमति प्रदान की, इसीलिए मैंने ही कुछ कहा।"

बाबाजीके चुप होनेपर सभा भङ्ग हुई। नरेन बाबू और आनन्द बाबू अवाक् होकर सुने हुए विषयकी आलोचना करते–करते वहाँसे चले गये।

अष्टम प्रभा समाप्त

नवम प्रभा

पण्डित बाबाजीके द्वारा दी गयी रस-शिक्षाके सम्बन्धमें दोनों बाबुओंका सिद्धान्त

पण्डित बाबाजीके मुखसे जो कुछ श्रवण किया था, उन विषयोंकी विशेष रूपसे चिन्ता करते-करते नरेन बाबू और आनन्द बाबूको नींद नहीं आयी। मल्लिक महाशय एक दूसरी कुटीमें कुम्भकका अभ्यास कर रहे थे। बाबाजी कृपापूर्वक उन्हें उस शिक्षामें सहायता प्रदान कर रहे थे। आनन्द बाबू और नरेन बाबू परस्पर कथोपकथन करने लगे।

नरेन बाबूने कहा—"आनन्द बाबू! ब्राह्माचार्य महाशयने कहा है कि भक्तिवृत्ति विषय-प्रेमवृत्तिसे एक स्वतन्त्र वृत्ति है, इसे मैं किसी भी प्रकारसे विश्वास नहीं कर पा रहा हूँ। पण्डित बाबाजीने जो आज्ञा की है, उसीमें मेरा मन सम्पूर्ण रूपसे लगता है। बद्ध होकर मानवकी एक भिन्न वृत्ति हुई है, ऐसा बोध नहीं होता। आत्माका जो साक्षात् धर्म (जो मुक्त अवस्थामें कार्य करता) है, वही बद्धावस्थामें मानस-धर्मके रूपमें कार्य कर रहा है। अतएव आत्मगत अनुराग ही ईश्वर-बहिर्मुखता लाभकर विषयानुरागके रूपमें कार्य कर रहा है। सांसारिक व्यवहारमें जो दास्य, सख्य, वात्सल्य और शृङ्गार रस देखता हूँ, वे सम्बन्धगत रस वैकुण्ठरसके ही विकार मात्र हैं—ऐसा निश्चित होता है।

स्वर्गीय प्रेमके सम्बन्धमें नरेन बाबुका सत्-सिद्धान्त

"जो स्वर्गीयभावसे संसारमें पुण्यवानके रूपमें रहते हैं, उनके चरित्रकी प्रशंसा सभी करते हैं। जो दास होकर अकृत्रिम प्रभु-भक्ति प्रकाश करते हैं, वे ऐसा जानते हैं कि प्रभुके मङ्गलमें ही मेरा मङ्गल है; जो सखा होकर सखाके सुखमें सुखी और सखाके दुःखमें

दुःखी होते हैं, एवं जो पुत्र होकर पितृ–सेवामें सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करनेके लिए प्रस्तुत हैं एवं जो पत्नी होकर पतिकी सुखवृद्धिके लिए मृत्यु तक को भी स्वीकार करती है—ऐसे धार्मिक व्यक्तियोंको सभी लोग स्वर्गीय आत्मा कहकर सम्मान देते हैं। अतएव सांसारिक–सम्बन्ध–घटित रसको पण्डित बाबाजीने जो स्वर्गीय–रस कहा है, वह सम्पूर्ण रूपसे वैज्ञानिक और युक्तिसङ्गत है।

"अनेक सम्मानित ग्रन्थोंमें हमने पढ़ा है कि किसी स्त्रीने नितान्त पतिभक्त होकर अपने हृदयनाथके लिए प्राण तक भी त्याग दिये। उनके चरित्रका पाठ करनेसे उनके प्रति कितनी भक्ति उदित होती है? स्त्री और पुरुषका सम्बन्ध—दैहिक है। देहके नाश होनेपर दोनोंका सम्बन्ध कहाँ रहेगा? एक आत्मा स्त्री है और एक आत्मा पुरुष है—नित्य–भावमें भी ऐसा है, यह बोध नहीं होता। क्योंकि स्त्रीत्व और पुरुषत्व केवल शरीरगत भेदमात्र हैं, आत्मगत नहीं। अतएव उस स्थलमें मृत्युपर्यन्त ही स्त्री–पुरुषका प्रेम रह सकता है। यदि वैदान्तिकोंकी भाँति 'जन्मान्तर' या 'स्वर्गवास' स्वीकार किया भी जाये और उस अवस्थामें अकृत्रिम प्रेमकी चरितार्थता लाभ होती है—इस प्रकारका विश्वास भी किया जाये, तथापि सम्पूर्ण मोक्षावस्थामें स्त्री–पुरुषके प्रेमकी अवस्थिति नहीं हो सकती है। अतएव पण्डित बाबाजीने जिस प्रेमको अनित्य कहा है, उसे मैं निश्चय सत्य समझकर अर्थात् सत्य ही वह प्रेम अनित्य है, इसपर विश्वास करता हूँ।

वैकुण्ठ–प्रेमके सम्बन्धमें नरेन बाबूका सत्–सम्बन्ध

"वैकुण्ठ–प्रेम नित्य है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। नितान्त दुर्भागे लोग भी इसे स्वीकार करते हैं कि प्रेम जगत्की समस्त वस्तुओंकी अपेक्षा उपादेय है। कामटी आदि शुद्ध तार्किकोंने भी प्रेमको सर्वानन्द धामके रूपमें स्वीकार किया है। दास्य, सख्य और वात्सल्य प्रेमकी अपेक्षा मधुररस अधिक उच्चतर है, यह इस प्रेमका स्वभाव देखनेसे ही समझा जा सकता है। यदि वैकुण्ठ–प्रेम नामक कोई अति–

चमत्कारिक प्रेम नहीं होता, तो प्रेमकी नित्यता नहीं होती। वह प्रेम ही आत्मास्वरूप जीवका परम उद्देश्य होना चाहिये, इसमें क्या सन्देह है?"

आनन्द बाबू—"बाबाजीने जो वैकुण्ठ-प्रेमका उपदेश दिया, वही जीवका एकमात्र उद्देश्य है। स्वर्गीय-प्रेम कभी भी जीवका उद्देश्य नहीं हो सकता है, क्योंकि उसका अन्त है। तो फिर पार्थिव-प्रेमकी तो बात ही क्या?"

नरेन बाबूके द्वारा ब्राह्म-मतका खण्डन—
(१) भाव युक्तिके अधीन नहीं है

नरेन बाबू—"ब्राह्माचार्य महाशयने कहा है कि भाव यद्यपि उत्कृष्ट है, तथापि युक्तिके अनुगत होकर नहीं रहनेसे भाव कदर्थ होगा। जरा देखें! किस सीमा तक आचार्य महाशयका भ्रम है? भाव यदि भावरूपिणी हो, तो फिर वह क्यों 'अन्ध और खञ्ज' युक्तिके वशीभूत होगा? 'भाव' जब वैकुण्ठके प्रति धावित होगा, तो युक्ति अवश्य ही उसे पार्थिव जगत्में आबद्ध रखनेकी चेष्टा करेगी। यदि उस समय युक्तिकी रक्षा की जाये, तो वैकुण्ठका दर्शन किस प्रकार सम्भव होगा? आनन्द बाबू! वैकुण्ठके विषयमें युक्ति चुप हो जाती है।

पितृभक्ति—भक्तिवृत्ति नहीं

"ब्राह्माचार्यने कहा है कि जब ईश्वरको पिता कहकर सम्बोधित किया जाता है, उस समय वात्सल्य-भक्ति अवश्य होती है, किन्तु उसके अन्तःकरणमें भूमा-पुरुषके प्रति अनिर्वचनीय भावका उदय होता है—जिसे भक्तिवृत्ति कहकर निर्देशित किया जा सकता है। आनन्द बाबू! आचार्य इस प्रकारकी अन्ध युक्तियोंके प्रति क्यों प्रीति रखते हैं, कह नहीं सकता! पितृभक्तिरूपी वृत्तिको ही भक्तिवृत्ति क्यों नहीं कहा जा सकता है? पार्थिव पिताके प्रति नियुक्त होनेपर

यह वृत्ति स्वर्गीय–रसगत वृत्ति होती है। परमपुरुषमें नियोजित होनेपर यह वैकुण्ठ–रसकी वात्सल्य–सम्बन्धगत भक्तिवृत्ति होती है—यह विश्वास करनेसे सब कुछ चरितार्थ होता है। भूमा–पुरुषका अर्थ ऐश्वर्यमय भगवान् समझा जाता है। यदि सम्बन्ध गाढ़ किया जायेगा तो यह ऐश्वर्य अवश्य छिप जायेगा और माधुर्यका उदय होगा।

ब्राह्माचार्यकी अवस्थापर शोक व्यक्त

"निष्कर्ष यह है कि जीवकी स्वभाव–सिद्ध वैकुण्ठ–रतिसे वात्सल्य, सख्य आदि सम्बन्धगत वृत्ति श्रीकृष्णमें प्रयोजित होती है। जब आचार्य महाशय इसका थोड़ा बोध करते हैं, उस समय ऐश्वर्य–चिन्ता आकर अन्य किसी अस्फुट रसको लक्ष्य कराती है। वह रस बाबाजीके द्वारा उपदिष्ट वैकुण्ठगत शान्त–रसमात्र है। आचार्य महाशयका सिद्धान्त पढ़कर यह बोध हो रहा है कि वे दुर्भागा हैं। जब उन्हें वात्सल्य और सख्य रसकी अपेक्षा शान्तरस अच्छा लगता है, तब वैकुण्ठ–तत्त्वमें उनकी उन्नति किस प्रकार होगी, यह समझमें नहीं आ रहा है।

दोनों बाबुओंकी शृङ्गाररसमें रुचि

"आनन्द बाबू! युक्तिवादी लोग कितनी भी घृणा क्यों न करें, मैं वैकुण्ठ–रसगत शृङ्गारके सम्बन्धसे माधुर्यमय भगवान्की उपासना करनेकी स्पृहा करता हूँ। आपका क्या विचार है?"

आनन्द बाबूने कहा—"नरेन! तुमने जो–जो कहा, वह कोहिनूरके समान मूल्यवान और आदरणीय है। मैं भी शृङ्गाररसकी पिपासासे पीड़ित हो रहा हूँ।"

इस प्रकार कथोपकथनमें रात बीत गयी और प्रभात हो गया। नियमित कार्योंमें दिन भी प्रायः व्यतीत हो गया।

पण्डित बाबाजी द्वारा वैकुण्ठ-रसतत्त्वकी पुनः आलोचना

दिनके ढलनेके समय पिछले दिनकी भाँति ही सभी पण्डित बाबाजीके मण्डपमें उपस्थित हुए। विनीत भावसे हरिदास बाबाजीने पिछली रातकी बात पण्डित बाबाजीको स्मरण करा दी और पण्डित बाबाजी कहने लगे—"प्रभु गौराङ्गदेवके पार्षद श्रीरूप गोस्वामीने 'श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु' और 'श्रीउज्ज्वलनीलमणि'—इन दोनों ग्रन्थोंकी रचनाकर सम्पूर्ण रूपसे जगत्में वैकुण्ठ-रसकी शिक्षा दी है। इन दोनों ग्रन्थोंको पाठ करनेसे ही विस्तीर्ण रूपसे रसतत्त्वसे अवगत हुआ जाता है। ग्रन्थके सुदीर्घ होनेके कारण मन्द बुद्धिवालोंके लिए ग्रन्थके तात्पर्यका संग्रह करना कठिन है। अतएव अनेक व्यक्ति संक्षेपमें इस तत्त्वको सुननेकी इच्छा करते हैं। इस तत्त्वके समस्त विषयोंका यथाक्रम वर्णन करनेका मेरा साहस नहीं है। अत्यन्त संक्षेपमें इस तत्त्वका स्थूल विषयसमूह कह रहा हूँ। अपार रससागरका वर्णन करनेमें मेरा जो दम्भ उदित हो, अदोषदर्शी वैष्णवगण उसे अवश्य क्षमा करेंगे। मैं वैष्णव-दास हूँ, वैष्णवोंकी अनुमतिका प्रतिपालन ही मेरे जीवनका प्रधान कार्य है।

वैकुण्ठतत्त्व और परब्रह्म सत्-हेतु सविशेष—निर्विशेष होनेसे नास्तित्व (अस्तित्वहीनता) को ही समझा जाता है

"वैकुण्ठ-रस नित्य, अनादि और अनन्त है। उपनिषदोंने परब्रह्मको कहीं-कहीं निर्विशेष कहा है। उन स्थलोंमें यही समझना चाहिये कि जड़जगत्में जलीय परमाणु, वायवीय परमाणु, तैजस परमाणु—इन्होंने जिस जड़ीय विशेष-धर्म द्वारा पार्थक्य लाभ किये हैं; वैसा जड़ीय 'विशेष' वैकुण्ठमें नहीं है। ऐसा किसी भी वैदिक-शास्त्रमें उपदेश नहीं दिया गया है कि वैकुण्ठमें 'विशेष' नहीं है। अस्तित्व और विशेष—ये दोनों एकसाथ सर्वत्र अवस्थान करते हैं। जो कुछ भी है, उसका एक विशेष धर्म है, जिसके द्वारा वह वस्तु अन्य वस्तुओंसे स्वतः भिन्न हो सकती है। यदि कहें कि 'विशेष' नहीं है, तो वस्तुका अस्तित्व नहीं है—यह कहनेसे

भी बात बन जायेगी। यदि परब्रह्म निर्विशेष होते, तो वे सृष्ट वस्तु या प्रपञ्चसे किस प्रकार पृथक् हो पाते? यदि उन्हें सृष्ट वस्तुसे पृथक् नहीं कह पायें, तो सृष्टिकर्त्ता और जगत् एक हो जाते हैं। इससे आशा, भरोसा, भय, तर्क और सभी प्रकारके ज्ञान नास्तित्व (अस्तित्वहीनता) में पर्यवसित हो जाते हैं।

ब्रह्म वैकुण्ठकी सीमा और आवरण

"जगत्से वैकुण्ठको भिन्न करनेमें एक 'विशेष' का प्रयोजन है। वैकुण्ठ अखण्डतत्त्व होनेपर भी पारमेश्वरी 'विशेष' द्वारा विचित्र है। वैकुण्ठ-जगत् चिन्मय और प्रकृतिसे अतीत है। निर्विशेष ब्रह्म कहनेसे वैकुण्ठके आवरण-देशका बोध होता है, क्योंकि जहाँ जड़ीय विशेष समाप्त होता है, वहाँ वैकुण्ठ-विशेषके आरम्भके पूर्व ही एक विशेषभावरूप विभाजक सीमा लक्षित होती है।

नित्य विशेष ही भगवान् और विभिन्न जीवोंमें भेदका संस्थापक

"वैकुण्ठमें परब्रह्म और मुक्त जीवसमूह अवस्थित रहते हैं। वहाँ 'विशेष' द्वारा भगवत्-स्वरूप नित्य प्रतिष्ठित है और जीवोंका चिन्मय सिद्धदेह नित्य व्यवस्थित है। 'विशेष' ही वहाँ एक जीवको अन्य जीवके साथ एक नहीं होने देता है एवं जीवसमूहको भगवान्में मिलितकर एक होनेका अवसर नहीं देता है। 'विशेष' द्वारा परस्परकी भिन्नता, अवस्थान और सम्बन्ध स्थापित होता है। 'विशेष' को भगवान्से पृथक् पदार्थ नहीं कहा जाता है। 'विशेष' ही भगवत्-कौशलरूप सुदर्शन चक्र है। वही भगवत्-शक्तिका प्रथम विक्रम है।

विशेष ही शक्तिका विक्रम; वह त्रिविध है, यथा—सन्धिनी, सम्वित् और ह्लादिनी

"भगवान्की अचिन्त्यशक्तिने 'विशेष'-रूप विक्रमका प्रकाशकर भगवान्का शरीर, जीवका शरीर, इन दोनोंका अवस्थान और भावरूप

चिन्मय देश इत्यादिका प्रकाश किया है। शक्तिका विशेषरूप विक्रम तीन प्रकारका है—सन्धिनी-विक्रम, सम्वित्-विक्रम और ह्लादिनी-विक्रम। सन्धिनी-विक्रमसे समस्त सत्ता प्रकाशित होती है। शरीर-सत्ता, शेष-सत्ता, काल-सत्ता, सङ्ग-सत्ता, उपकरण-सत्ता आदि सत्तासमूह सन्धिनीके द्वारा निर्मित है। सम्वित्-विक्रमसे समस्त 'सम्बन्ध और भाव' प्रकाशित होते है तथा ह्लादिनी-विक्रमसे समस्त रस। सत्ता एवं 'सम्बन्ध और भाव'—इन सबका शेष प्रयोजन है—रस। जो 'विशेष' को नहीं मानते हैं अर्थात् निर्विशेषवादी हैं, वे अरसिक हैं। 'विशेष' ही रसका जीवन है।

जगत् भूतमय और अपवित्र—वैकुण्ठ चिन्मय और पवित्र

"एक बात इसके सङ्ग ही समाप्त हो। वैकुण्ठ चिन्मय, जीव चिन्मय, भगवान् चिन्मय, सम्बन्ध चिन्मय, वहाँका कर्म चिन्मय एवं फलसमूह चिन्मय है। क्या, बात समझमें आयी? भूतमय जगत् जिस प्रकार भूतके द्वारा गठित है, उसी प्रकार चिन्मय धाम भी चित्-वस्तुके द्वारा गठित है। 'चित्' क्या है?—भूत-विशेष, भूत-सूक्ष्म या भूत-विपर्यय? उत्तर है—इनमेंसे कुछ भी नहीं। 'चित्' भूत-आदर्श है। 'चित्' जिस प्रकार पवित्र है, भूत उसी प्रकार अपवित्र है।

'चित्' शब्दका अर्थ समाधिलब्ध ज्ञान, आत्मा और आत्माका कलेवर

"हठात् कहनेसे 'चित्' की तुलना 'ज्ञान' से की जाती है। यह भी किस प्रकार हो सकता है? हमलोगोंका ज्ञान भूतमूलक है, क्या 'चित्' भी इसी प्रकार है?—नहीं। यदि पवित्र ज्ञान समाधि द्वारा आत्मामें उपलब्ध हो, तो चित्-गत ज्ञानका आस्वादन हो सकता है। 'चित्' कहनेसे केवल आत्माका ही बोध होता है—ऐसा नहीं है। शुद्ध आत्माका स्वरूप अर्थात् कलेवर चित्-गठित (चित् द्वारा गठित) है। 'चित्' नामक एक गठन-सामग्री अचिन्त्यशक्तिके द्वारा नित्य प्रकाशित है। उस द्रव्यमें स्थान, शरीर और अन्यान्य

उपकरण वैकुण्ठमें नित्यरूपमें आविर्भूत हुए है। आत्मा वैकुण्ठतत्त्व है, अतएव उसके साथ चित्स्वरूप जगत्‌में आया है और इस जगत्‌में आकर भूत नामक द्रव्यको प्रतिफलित किया है। अतएव चित्–वस्तु भूत, भूतसूक्ष्म, भूत–तन्मात्र और भूत–विपर्यय जो निर्विशेष है, उन सबकी अपेक्षा सूक्ष्म और उपादेय है।

चित् या चैतन्य प्रत्यक् तथा परागके भेदसे दो प्रकारके हैं

"चित् और चैतन्य एक ही वस्तु है। 'चैतन्य' शब्दके सम्बन्धमें थोड़ा जानना चाहिये। चैतन्य दो प्रकारका है—प्रत्यग् चैतन्य और पराग् चैतन्य। जिस समय वैष्णवको प्रेमावेश होता है, उस समय जो कुछ उदित होता है, वही प्रत्यग् चैतन्य अर्थात् अन्तरस्थ ज्ञान है। जिस समय पुनः प्रेमावेश भङ्ग होता है, उस समय जड़जगत्‌में दृष्टि पड़ती है एवं पराग् चैतन्यका उदय होता है। पराग् चैतन्यको चित् नहीं अपितु चिदाभास कहते हैं।

"मुक्तावस्थामें हम चित्स्वरूप हैं। बद्धावस्थामें हम चित्–अचित्–आभास–स्वरूप हैं। मुक्तावस्थामें वैकुण्ठ–रस हमारा सेव्य है। बद्धावस्थामें वही हमारा अनुसन्धेय है। सेव्य–रस ही इस आकारमें (किन्तु विकारसहित) आलोचनीय हुआ है।

शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—
इन पाँच प्रकारके रसोंका परिचय

"समस्त चित्–वस्तु ही शान्त–रसमय है। सम्बन्ध–भेदसे रस पाँच प्रकारके हैं। शान्तरस ही प्रथम रस है। इसमें भगवान्‌के चरणोंमें विश्राम, मायिक यातनासे छुटकारा, भगवान्‌के अतिरिक्त कुछ अच्छा नहीं लगना—ये कुछेक भाव हैं। ब्रह्मवादरूप शुष्क निर्विशेषवाद समाप्त होनेपर ही इस रसका उदय होता है। सनक, सनातन, सनन्दन और सनत्कुमार पहले निर्विशेषवादी थे। बादमें भगवान्‌की शरणागति स्वीकारकर शान्तरसमें मग्न हुए। शान्तरसमें भी अप्रस्फुटित रूपमें

स्थायीभाव, विभाव, अनुभाव और सञ्चारीभाव लक्षित होते हैं। शान्तरसमें स्थायीभाव चिर-काल ही रतिस्वरूपमें अवस्थित रहता है—पुष्ट होकर भी प्रेमस्वरूप नहीं होता है।

"सौभाग्यवश रसकी वृद्धि होनेपर रसकी द्वितीय अवस्था जो दास्यरस है, वह उदित होती है। इसमें ममतारूप एक सम्बन्धस्थ गूढ़भाव आकर सम्बन्ध-भावको पुष्ट करता है। रति जो स्थायीभाव है, वह इस रसमें प्रेमके रूपमें पुष्ट होती है। उस समय भगवान् जीवके एकमात्र प्रभु एवं जीव एकमात्र भगवान्का दास होकर परस्पर सम्बन्ध स्वीकार करते हैं।

"सख्य ही तृतीय रस है। इसमें स्थायीभाव जो रति है, वह प्रेम-अवस्थासे उन्नत होकर प्रणय अवस्था तक लाभकर रस हो जाती है। इस रसमें प्रभु और दासरूप सम्भ्रम दूर हो जाता है और विश्वास बलवान हो जाता है।

"चतुर्थ रस वात्सल्यरस है। इसमें रति प्रेम और प्रणयको अतिक्रमकर स्नेहताको प्राप्त होती है। इसमें विश्वास समृद्ध होकर बल हो जाता है।

"मधुररस ही पञ्चम रस है। इसमें स्थायीभावरूप जो रति है वह प्रेम, प्रणय और स्नेह-अवस्थाका अतिक्रमकर मान, भाव, राग, महाभाव तक उन्नत होती है। इसमें बलकी वृद्धि इतनी अधिक होती है कि परस्पर एक-चित्त एक-प्राण हो जाते हैं।

वैकुण्ठके विविध प्रकोष्ठ तथा कौन-कौन-सा रस किस-किस प्रकोष्ठमें अवस्थित

"ये पाँचों रस ही वैकुण्ठमें हैं। वैकुण्ठका बाह्य प्रकोष्ठ ऐश्वर्यमय है और अन्तःपुर माधुर्यमय है। ऐश्वर्यमय अंशमें भगवान् नारायणचन्द्र रहते है और माधुर्यमय प्रकोष्ठमें भगवान् कृष्णचन्द्र। माधुर्यमय प्रकोष्ठ दो भागोंमें विभक्त है—गोलोक और वृन्दावन।

“शान्त, दास्य—ये दो रस ऐश्वर्यमय प्रकोष्ठमें सर्वदा मूर्त्तिमान हैं। सख्य, वात्सल्य और मधुर रस—माधुर्यमय प्रकोष्ठमें नित्य विराजमान है।

“जिस जीवकी जिस रसमें प्रवृत्ति है, उसका उसी रसमें विश्राम है और उसीमें ही वे आनन्द प्राप्त करते हैं।

नवम प्रभा समाप्त

दशम प्रभा

रति ही रसका मूल

"स्थायीभाव, विभाव, अनुभाव और सञ्चारीभाव—इन चारों भावोंका संयोग नहीं होनेपर रसका उदय नहीं होता है।

"सबसे पहले स्थायीभावका विचार करना कर्त्तव्य है। रसकी उद्दीपनामें जो भाव मुख्य रूपसे कार्य करता है, उसे स्थायीभाव कहते हैं। रति ही स्थायीभाव है, क्योंकि रति ही स्वाद्यत्व लाभ करनेपर रस होता है। विभाव, अनुभाव और सञ्चारीभाव—ये सहायताकर रतिको रस बना देते है। विभाव, अनुभाव और सञ्चारीभाव—ये स्वयं कभी भी रस नहीं होते। रसकी उद्दीपनाका कारण है—विभाव। रसोद्दीपनका कार्य है—अनुभाव। रसोद्दीपनका सहकारी है—सञ्चारीभाव। अतएव रति ही रसका मूल है, विभाव रसका हेतु है, अनुभाव रसका कार्य है एवं सञ्चारीभाव रसका सहकारी है। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—इन पाँच प्रकारके रसोंके सभी प्रकारके रसोंमें ही इन कुछेक अवस्थाओंका ऐक्य है।

रतिके तीन प्रकारके लक्षण, यथा—भावमयी, आग्रहमयी और वासनामयी

"रति क्या है? उत्तर है—स्थायीभाव। कुछ भी समझमें नहीं आया! लिप्सा और उल्लासमयी आनुकूल्यात्मिका ज्ञप्तिका नाम है—रति। आत्माकी प्रथम क्रिया ही रति है। आत्मा ज्ञानमय है, अतएव ज्ञप्ति ही इसका कार्य है। ज्ञप्ति दो प्रकारकी होती है—चिन्तामयी ज्ञप्ति और रसमयी ज्ञप्ति। जब चिन्तामयी ज्ञप्ति पुष्ट होती है, तब ज्ञानाङ्गके व्यापारसमूह उत्पन्न होते हैं। जब रसमयी ज्ञप्तिकी अभिव्यक्ति होती है, तब रति उत्पन्न होती है। रतिका

लक्षण यह है कि यह आनुकूल्यात्मिका अर्थात् इष्ट साधिनी भावमयी—उल्लासमयी अर्थात् इष्टके सम्बन्धमें आग्रहमयी तथा लिप्सामयी अर्थात् ईष्ट–वासनामयी होती है।

रसकी चेष्टाके अङ्कुरका नाम ही रति है, रुचि नहीं

"रसके प्रति आत्माकी चेष्टाके प्रथम अङ्कुरको रति कहते हैं। कोई–कोई रुचिको आत्माकी चेष्टाका अङ्कुर कहते हैं। इससे यथार्थकी चरितार्थता नहीं होती है, क्योंकि आत्माकी ज्ञानचेष्टा और रसचेष्टा—इन दोनों प्रकारकी ही चेष्टाके अङ्कुरको रुचि कहा जाता है। शुद्ध रसचेष्टाके अङ्कुरका ही नाम है—रति। शुद्ध ज्ञानचेष्टाके अङ्कुरका नाम है—वेदना। अन्यान्य भावसमूह रतिका आश्रयकर रसोद्दीपनके कार्यमें अवस्थिति कर सकते हैं, इसलिए रतिका नाम है—स्थायीभाव। 'वैकुण्ठ–रस' में आत्मरति ही स्थायीभाव है। स्वर्गीय–रसमें चित्त–रति ही स्थायीभाव है। इसीलिए सामान्य आलङ्कारिक लोगोंने रतिको चित्त–उल्लासमयी कहा है। पार्थिव–रसमें इन्द्रिय उल्लासमयी रतिको स्थायीभाव कहा जा सकता है।

"शान्त, दास्य आदि पाँच सम्बन्धोंमेंसे किसी सम्बन्धसे भाव–संलग्न होनेमात्रसे ही गुप्त रतिकी अभिव्यक्ति होती है और यह क्रमशः दीप्त होकर प्रेम, स्नेह, प्रणय, मान, रति, राग, अनुराग, महाभाव हो पड़ती है। रतिकी पुष्टिके साथ उद्दिष्ट रसकी पुष्टि होती है।

विभावके अन्तर्गत विषय और आश्रयके भेदसे आलम्बन द्विविध

"विभाव दो प्रकारका होता है—आलम्बन और उद्दीपन। पुनः आलम्बन दो प्रकारका होता है—आश्रय और विषय। जिसमें रति है, उसे आश्रय कहते हैं और जिसके प्रति रतिकी चेष्टा होती है, उसे विषय कहते हैं। मूल तत्त्व एक होनेपर भी उदाहरणके स्थलमें भिन्न–भिन्न रसमें कुछ भिन्नताएँ हैं। ऐश्वर्यगत रसमें श्रीनारायणका उदाहरण आता है और माधुर्यरसमें श्रीकृष्णका। हम

शृङ्गाररसका अवलम्बनकर उदाहरण देंगे। श्रीकृष्ण एवं कृष्णभक्त आलम्बन हैं। भक्तके प्रति श्रीकृष्णकी जो रति होती है, उसके 'आश्रय' हैं—श्रीकृष्ण और 'विषय' हैं—भक्त। कृष्णके प्रति भक्तकी जो रति होती है, उसके 'विषय' हैं—श्रीकृष्ण और 'आश्रय' हैं—भक्त।

विभावके अन्तर्गत उद्दीपन

"आश्रय और विषयमें जो गुणसमूह हैं, वे हैं उद्दीपन। विषयके जिस गुणमें रति आकृष्ट होती है, वही है उद्दीपन। श्रीकृष्णचन्द्रके माधुर्यमय गुणसमूह अनन्त और अपार हैं। जीवात्मा उन्हीं गुणसमूहके द्वारा मोहित होता है। उन समस्त गुणोंको जीव-रतिका उद्दीपन कहना चाहिये। श्रीकृष्णचन्द्र भी भक्त-जीवकी अनुरक्ति आदि गुणोंके प्रति आकृष्ट होते हैं। ये समस्त गुण ही कृष्णरतिके उद्दीपन हैं। रतिको व्यक्त करनेवाला सम्बन्ध-भाव विभावके अनुगत है।

शृङ्गाररस—स्वकीय और पारकीय

"शृङ्गाररसमें श्रीकृष्ण पुरुष हैं और समस्त भक्तगण स्त्री हैं। श्रीकृष्ण पति है और भक्तसमूह उनकी पत्नियाँ हैं। स्वकीय-पारकीयके सम्बन्धमें इसमें एक गूढ़ तत्त्व है, गूढ़ भावसे शिक्षागुरुके श्रीचरणोंमें उसकी शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती है। इस प्रकार सभामें यदि उसे व्यक्त करूँ तो अनधिकारीके पक्षमें विशेष अमङ्गल हो सकता है। उच्च-पदस्थ नहीं होनेपर उच्च-स्थित सत्यसमूह लभ्य नहीं होते। जिस प्रकार समस्त विज्ञानशास्त्रमें क्रमशः उच्च ज्ञानका उदय होता है, उसी प्रकार भक्तिशास्त्रमें भी उच्चाधिकारके क्रमसे गूढ़ तत्त्वकी प्राप्ति होती है।

जिसका जो रस है, उस रसके अतिरिक्त अन्य किसी रसमें उसका अधिकार नहीं

"जो शान्तरसके भक्त हैं, वे परमेश्वरको सखा कहनेमें काँप जाते हैं। जो वात्सल्यरसके भक्त हैं, वे उन्हें पति कहनेमें कुण्ठित

होते हैं। जो स्वकीय कान्तभावके सेवक हैं, वे मान आदिसे सम्बन्धित वाम्य–भावका विस्तार करनेमें नितान्त अयोग्य हैं। भक्तके अधिकार–क्रमसे श्रीकृष्ण किस सीमा तक अधीनताका भाव स्वीकार करते हैं, जयदेव आदि परम रसिकगण ही इससे अवगत हैं। आपलोग भी रसिक भक्त हैं, अतएव मैं इस विषयमें और अधिक नहीं कहूँगा। रसतत्त्वकी मूल कथाके अतिरिक्त सूक्ष्म–सूक्ष्म उदाहरणोंमें मैं प्रवेश नहीं करूँगा। विभावके सम्बन्धमें मैं इतना ही कहूँगा कि श्रीकृष्ण पति एवं उपपति–भावके आलम्बन हैं और भक्त स्वकीया, पारकीया तथा साधारणीके भेदसे तीन प्रकारके होते हैं। आप 'श्रीउज्ज्वलनीलमणि' ग्रन्थके द्वारा इन विषयोंको विशेष रूपसे जान सकेंगे।

अनुभाव—(क) आङ्गिक और (ख) सात्त्विक

"सर्वप्रथम अनुभाव दो प्रकारका होता है—आङ्गिक और सात्त्विक। कोई–कोई सात्त्विक अनुभावका स्वाधीन अङ्गके रूपमें भी वर्णन करते हैं। फलतः तत्त्व एक ही प्रकारका है।

(क) आङ्गिक अनुभाव तीन प्रकारका होता है—(१) अलङ्कार, (२) उद्भास्वर तथा (३) वाचिक।

अलङ्कार भी तीन प्रकारका होता है—(१) अङ्गज, (२) अयत्नज तथा (३) स्वभावज।

(१) अङ्गज अनुभावके तीन प्रकार—(१) भाव, (२) हाव तथा (३) हेला।

(२) अयत्नज अनुभावके सात प्रकार—(१) शोभा, (२) कान्ति, (३) दीप्ति, (४) माधुर्य, (५) प्रगल्भता, (६) औदार्य तथा (७) धैर्य।

(३) स्वभावज अनुभावके दस प्रकार—(१) लीला, (२) विलास, (३) विच्छित्ति, (४) विभ्रम, (५) किलकिञ्चित, (६) मोट्टायित, (७) कुट्टमित, (८) विर्वोक, (९) ललित तथा (१०) विकृत।

ये कुछ आलङ्कारिक अनुभाव दर्शित हुए।

(२) पाँच प्रकारके उद्भास्वर—(१) वेशभूषाका शैथिल्य, (२) गात्र-मोटन, (३) जृम्भा, (४) घ्राणका फुल्लत्व तथा (५) निश्वास-प्रश्वास।

(३) बारह प्रकारके वाचिक अनुभाव—(१) आलाप, (२) विलाप, (३) संलाप, (४) प्रलाप, (५) अनुलाप, (६) उपलाप, (७) सन्देश, (८) अतिदेश, (९) अपदेश, (१०) उपदेश, (११) निर्देश तथा (१२) व्यपदेश। ये समस्त आङ्गिक अनुभाव कहे गये हैं।

(ख) सात्त्विक अनुभाव—सात्त्विक अनुभाव आठ प्रकारके होते हैं—(१) स्तम्भ, (२) स्वेद, (३) रोमाञ्च, (४) स्वरभङ्ग, (५) वेपथु, (६) वैवर्ण, (७) अश्रु तथा (८) प्रलय।

आङ्गिक और सात्त्विक अनुभावके पार्थक्यका विचार

"'अङ्ग' और 'सत्त्व' में सूक्ष्म भेद है। विचारकर इस सूक्ष्म भेदको नहीं समझनेसे कभी भी पूर्वोक्त विभागका ठीक-ठीक ज्ञान नहीं होगा। समस्त अङ्गोंका अधिष्ठाता है—चित्त। चित्तकी विकृतिको सत्त्व कहते हैं। इस चित्तमें जो भावसमूह उदित होते हैं, वे अङ्गोंमें व्याप्त होते हैं। तथापि इनके जन्मस्थानका विचार करनेपर इन भावोंको सात्त्विक विकार कहा जाता है। परन्तु आङ्गिक भावसमूह प्रति-अङ्गमें उदित होकर दीप्त होते हैं। सात्त्विक विकारसमूह सत्त्वमें उदित होते हैं। आङ्गिक विकारसमूह अङ्गगत भावमें उदित होते हैं। यह विभाग अत्यन्त सूक्ष्म है। इसे समझनेमें समय लगेगा।

तैंतीस सञ्चारीभाव

"रसके सम्बन्धमें जिस प्रकार स्थायीभाव और विभाव दो प्रधान पर्व हैं, उसी प्रकार अनुभावको भी एक प्रधान पर्व समझना चाहिये।

जिस प्रकार अनुभाव एक पर्व है, उसी प्रकार सञ्चारीभावसमूह भी एक पर्व है। ये तैंतीस हैं—(१) निर्वेद, (२) विषाद, (३) दैन्य, (४) ग्लानि, (५) श्रम, (६) मद, (७) गर्व, (८) शङ्का, (९) आवेग, (१०) उन्माद, (११) अपस्मार, (१२) व्याधि, (१३) मोह, (१४) मृति, (१५) आलस्य, (१६) जाड्य, (१७) व्रीडा, (१८) अवहित्थ, (१९) स्मृति, (२०) वितर्क, (२१) चिन्ता, (२२) मति, (२३) धृति, (२४) हर्ष, (२५) औत्सुक्य, (२६) औग्र्य, (२७) आमर्ष, (२८) असूया, (२९) चापल्य, (३०) निद्रा, (३१) सुप्ति, (३२) प्रबोध तथा (३३) दशा।

व्यभिचारीभाव

"इन सञ्चारीभावोंको व्यभिचारीभाव भी कहा जाता है। रति, जो स्थायीभाव है, उसे ये भावसमूह पुष्ट करते हैं। स्थायीभावकी समुद्रके साथ तुलना करनेपर सञ्चारीभावसमूहकी तुलना लहरियोंके साथ की जा सकती है। ये लहरियाँ जिस प्रकार समय–समयपर वेगपूर्वक उठकर समुद्रको स्फीत (वर्धित) करती हैं, उसी प्रकार सञ्चारीभावसमूह रस–साधकके रतिसमुद्रमें उन्मज्जन और निमज्जन द्वारा रसको स्फीत (नवनवायमान बनाये रखकर वर्धित) करते हैं। विषेश रूपसे स्थायीभावके प्रति धावित होनेके कारण इन्हें व्यभिचारीभाव भी कहा जाता है।

सञ्चारीभावसमूह रतिके पुष्टिकारक हैं

"सञ्चारीभावसमूह चित्तस्थ भावविशेष हैं। चित्तमें जो तैंतीस भाव स्वभावतः उदित होते हैं, वे सभी भाव शृङ्गाररसमें श्रीकृष्णके सम्बन्धमें उदित होनेपर ही शृङ्गाररसके सञ्चारीभाव होते हैं। ये भावसमूह विपरीत भावापन्न होते हैं। सभी भाव एक ही समय कार्य करते हैं—ऐसा नहीं है। जिस समय जिस प्रकारका रसकार्य होता रहता है, उस समय उसके अनुसार ही सञ्चारीभावका उदय होता है। कभी निर्वेद, तो कभी मद। कभी आलस्य, तो कभी प्रबोध।

कभी विषाद, तो कभी हर्ष, कभी मोह, तो कभी मति। इस प्रकार सञ्चारीभावका उदय नहीं होनेपर रति किस प्रकार पुष्ट होगी?

रति सम्बन्धाश्रित होनेपर ही प्रेम होता है

"अब ठीकसे विचार कर देखें, स्थायीभावरूप रति ही नायकस्वरूप है। सम्बन्धात्मक विभाव ही उसका सिंहासन है। कार्यरूप अनुभाव ही उसका विक्रम है। सञ्चारीभावसमूह ही उसके सैन्य हैं। रसके जो पाँच प्रकारके भेद हैं, ये केवल सम्बन्ध-भेदक्रमसे स्फुट होते हैं। रति ही रसतत्त्वका अविभाज्य मूलस्वरूप है। अकेले रहनेपर ही यह रति है, सम्बन्ध योजित होते ही यह प्रेम है। सम्बन्धका आश्रय प्राप्त होनेके समय रति जिस प्रकारके विभावको प्राप्त करती है, उसी प्रकारके सम्बन्धयोगसे उसके अनुयायी रसाश्रित प्रेमके रूपमें पर्यवसित होती है। उस रसकी जितनी ही उन्नति होती है, साधक अन्य रससे उतना ही दूर होता जाता है। जिस रसमें जिसकी उन्नति है, वही रस ही उसके लिए श्रेयः और श्रेष्ठ है। यही रसतत्त्वका स्वरूप-विचार है।

तटस्थ विचारसे रसका तारतम्य तथा शान्तरसका विचार

"तटस्थ विचारसे शान्तकी अपेक्षा दास्य श्रेष्ठ है, दास्यसे सख्य श्रेष्ठ है, सख्यसे वात्सल्य श्रेष्ठ एवं वात्सल्यरससे मधुररस श्रेष्ठ है। तटस्थ विचार द्वारा इस प्रकारका तारतम्य देखा जाता है। शान्तरसमें रति अकेली अवस्थित रहती है। इसमें विभाव, अनुभाव और सञ्चारीभाव अप्रस्फुटित होते हैं। इस स्थितिमें साधक मायाका परित्यागकर ब्रह्मगत होकर निर्विशेषप्राय अदृष्ट जड़की भाँति लक्षित होता है। यह यद्यपि मुक्तिविशेष है, किन्तु मुक्तिका फल नहीं है। अलक्षित रति आकाशकुसुमकी भाँति अकर्मण्य होती है। उच्चतर साधकके पक्षमें यह तुच्छ है। ब्रह्म-साधकगण इसकी कितनी भी प्रंशसा क्यों न करें, वैष्णवगण इस अवस्थाको गर्भस्थ अवस्थाके रूपमें जानते हैं।

दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर रसका विचार

“विभाव संयोजित होनेके साथ–ही–साथ दास्यरसका उदय होता है। दास्य दो प्रकारका होता है—सिद्ध–दास्य और उन्नतिगर्भ दास्य। सिद्ध–दास्यमें दास्यरस ही सीमा है। उन्नतिगर्भ दास्यमें सख्य, वात्सल्य और मधुर रसका अङ्कुर है।

“इसी प्रकार सख्य भी दो प्रकारका है—सिद्ध–सख्य और उन्नतिगर्भ सख्य। सिद्ध–सख्यमें रति, प्रेम और प्रणय अचल रूपमें लक्षित होते हैं। उन्नतिगर्भ सख्यमें वात्सल्य और कान्तभावका अङ्कुर है।

“वात्सल्य सर्वत्र ही सिद्ध है। वात्सल्य अन्य रसमें पर्यवसित नहीं होता है। सख्यरस पुष्ट होनेपर या तो वात्सल्यरस होगा, नहीं तो मधुररस होगा। एक प्रकारसे वात्सल्यरस चरम होनेपर भी मधुररसकी अपेक्षा न्यून है। मधुररसमें प्रणय, मान, और स्नेह इत्यादिकी सीमा नहीं है। यह सम्पूर्णतः स्वाधीन है।

रसतत्त्व श्रीगुरुदेवके निकट आस्वादन द्वारा ज्ञातव्य

“हे वैष्णव महोदयगण! मैंने संक्षेपमें रसतत्त्व कहा है। केवल वाक्य विवृत्ति (विस्तार) द्वारा इस सम्बन्धमें अधिक नहीं कहा जा सकता है। रस आस्वादनका विषय है। श्रवणमात्रसे कोई रसको नहीं जान सकता है। आपलोग जिस समय इस पवित्र रसका आस्वादन करते हें, उस समय जिन अनुभूतियोंका उदय होता है, उन्हें आपलोग जानते हैं, वाणी द्वारा कभी भी उसे व्यक्त नहीं कर सकते। यदि हमलोगोंमेंसे कोई रसतत्त्वका आस्वादन नहीं करते हैं, तो उनका कर्त्तव्य यह है कि उपयुक्त गुरुदेवका आश्रय लेकर रहस्यपूर्वक रसका आस्वादनकर उसके तत्त्वका अनुभव करें। इससे अधिक मैं कुछ नहीं कह सकता। मैंने वैष्णवचरणोंमें अशेष प्रणतिपूर्वक विश्राम ग्रहण किया।”

आनन्द बाबू और नरेन बाबूको वैष्णवताकी प्राप्ति

सभी वैष्णवगण पण्डित बाबाजीके अमृतमय वचनोंसे प्रसन्न होकर 'साधु, साधु' ध्वनि करते हुए अपने–अपने स्थानको चले गये।

आनन्द बाबू और नरेन बाबूने बाबाजी महाशयकी वक्तृता श्रवणकर नितान्त रसपिपासु होकर रसशिक्षा प्राप्त करनेके लिए योगी बाबाजीका चरणाश्रय किया। श्रीगुरुदेवसे उन्होंने जो प्राप्त किया, अत्यन्त रहस्यमय होनेके कारण उसका प्रकाश नहीं किया जा सकता। प्रारब्धवशतः मल्लिक महाशयकी योगशास्त्रमें ही विशेष क्षमता उत्पन्न हुई, वे रसतत्त्वके विषयमें कुछ भी नहीं समझ सके।

दशम प्रभा समाप्त

प्रेम–प्रदीप सम्पूर्ण।

पवित्र वैष्णवधर्मकी सर्वश्रेष्ठता प्रमाणित करनेकी अभिलाषासे मैंने इस 'प्रेम–प्रदीप' नामक ग्रन्थकी रचना करके अपनी 'सज्जनतोषणी' (नामक पत्रिका) में इसे खण्ड–खण्ड करके प्रकाशित किया था। इसके द्वारा अनेक कृतविद्य (पढ़े–लिखे) युवकोंको कृष्णभक्तिकी प्राप्ति हुई है। अब उन्हींकी इच्छानुसार ही मैंने इस ग्रन्थको पुस्तकके रूपमें मुद्रित किया है।

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

सच्चिदानन्द श्रील भक्तिविनोद ठाकुरका प्रत्येक ग्रन्थ ही समस्त शास्त्रोंका सार–सङ्कलन है। 'प्रेम–प्रदीप' ग्रन्थ भी उनसे अलग नहीं है अर्थात् इसमें भी उनके द्वारा सभी शास्त्रोंके सारको ही सङ्कलित किया गया है।

श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज